

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्री अवेद्यनाथ जी महाराज

## आशीर्वचन

योग-साधना के क्षेत्र में हठयोग- साधना नाथ पंथ की एक अनुपम और मौलिक देन है। आदिनाथ भगवान् शिव ने तत्त्व-जिज्ञासु भगवती पार्वती के प्रश्नों का उत्तर देते हुए सर्वप्रथम योग-विषयक जो गुप्त-ज्ञान प्रकाशित किया था उसे दैवयोग से मछली के पेट में स्थित महायोगी मत्स्येन्द्रनाथजी ने ग्रहण कर अपने शिष्य महायोगी गोरक्षनाथ को प्रदान किया। तदनन्तर शिवोपज्ञ यह योग-विद्या शिवावतार महायोगी गुरु गोरक्षनाथ और उनकी परम्परा के अन्य योगेश्वरों के माध्यम से लोक-कल्याण के लिए महलों से कुटियों तक प्रचारित और प्रतिष्ठित की गयी। हठयोग की साधना मुख्यतः प्राण-साधना है। (“ हश्च ठश्च हठौ-सूर्यचन्द्रौ तयोर्योगः हठयोगः । एतेन हठशब्दवाच्ययोः प्राणापानयोरैक्यलक्षणः प्राणायामो हठयोगः । ” हठयोग-प्रदीपिका में ब्रह्मानन्द की व्याख्या) सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति में महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी ने स्वयं कहा है-

**हकारः कीर्तिः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ।  
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते ॥ । अर्थात्**

सूर्य (प्राण) को “ह” कहा जाता है और चन्द्र (अपान) को “ठ” कहते हैं। इन्हीं “ह” और “ठ” (प्राण तथा अपान) के योग को हठयोग कहा जाता है।

शरीर को स्वस्थ, मन को स्थिर और आत्मा को परमात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित करने में अमोघ साधन के रूप में हठयोग-साधना का विशेष महत्त्व है जिसे नाथयोगियों सिद्धों और साधकों ने प्रचारित तथा प्रतिष्ठित किया है।

हठयोग-साधना में शरीर-शुद्धि का विशेष और महत्त्वपूर्ण स्थान है। कायागढ़ को जीतने के अभियान का यह प्रथम सोपान है। इसके शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य और धैर्य आदि सात साधन हैं (धेरण्ड संहिता- 1/9-11) जिनमें षट्कर्मों (हठयोग-प्रदीपिका-2/22) द्वारा शोधन, आसनों से दृढ़ता, मुद्राओं से स्थिरता, प्रत्याहार से लाघव, ध्यान से ध्येय का प्रत्यक्ष दर्शन और समाधि से निर्लिप्तआसक्ति रहितता का विधान है। उपर्युक्त षट्कर्मों में धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति क्रियायें नियमानुसार की जाती हैं जिनसे शरीरस्थ त्रिधातुओं-कफ, वात और पित्त का दोष नष्ट होता है, शरीर में ताजगी आती है, दीर्घीयुष्य और आरोग्य प्राप्त होता है। इस प्रकार मलापनोदन द्वारा नाड़ियों के निर्दोष होने पर प्राणवायु का शरीर में सम्यक् संचार होता और शरीर हठयोग-साधना के लिए तैयार हो जाता है। शरीर-शोधन की तरह ही हठयोग-साधना में आसनों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि चौरासी लाख जीव-योनियों के बराबर ही चौरासी लाख आसन भी बताये गये हैं तथापि व्यावहारिक दृष्टि से इनमें चौरासी आसनों की ही चर्चा आती है जिनमें छत्तीस आसन प्रमुख हैं। आसनों के नियमित अभ्यास से शारीरिक एवं मानसिक आधि-व्याधियों से मुक्ति मिलती है और इस प्रकार शरीर हठयोग-साधना के लिए और योग्य हो जाता है।

आसनों की सिद्धि के बाद हठयोग-साधना में प्राणायाम का विशेष महत्त्व है। इसके पूरक, रेचक और कुम्भक

तीन प्रमुख भेद भी हैं। इवास अन्दर भरना पूरक कहलाता है, इसे बाहर निकालना रेचक कहलाता है तथा बाहर से भरी हुई श्वास को भीतर ही रोकना कुम्भक कहा जाता है। प्राणायाम से नाड़ी-शोधन होता है और जब समस्त नाड़ी समूह प्राणायाम के अभ्यास से शुद्ध हो जाता है तभी योगी प्राणों को नियन्त्रित करने में समर्थ होता है। इस साधना में सूर्य-चन्द्र नाड़ियों-इडापिंगला-के शोधन के बाद प्राणवायु का मध्य नाड़ी (सुषुम्णा) में संचार नितान्त आवश्यक है क्योंकि ब्रह्म-रन्ध्र में सुषुम्णा नाड़ी से प्राण-शक्ति के स्थिर न होने पर मन की चंचलता दूर नहीं हो सकती और साधक उन्मनी अवस्था में प्रतिष्ठित होकर आत्मसाक्षात्कर नहीं कर सकता है। इसलिए हठयोग-साधना में प्राणायाम का असाधारण महत्व है। क्योंकि इससे शरीर और मन की स्थिरता सिद्ध होती है। इसीलिए महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी का स्पष्ट कथन है कि-महामुद्रा, नभोमुद्रा, उडिडयान बन्ध, जालन्धर बन्ध और मूलबन्ध के अभ्यास में जो योगी कुशल होता है वही मुक्ति का पात्र है। अस्तु हठयोगी को सुषुम्णा के मुख के अग्रभाग में सोयी हुई कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए मुद्राओं का भलीभाँति अभ्यास करना चाहिए।

षट्कर्म, आसन, प्राणायाम और मुद्राओं के बाद हठयोग-साधना में प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का क्रम आता है। इन्द्रियों को उनके बाह्य विषयों से विमुख कर अन्तर्मुखी करना, उन्हें आत्मा में लीन करना प्रत्याहार है। (यतोयतः मनश्चरति चाच्चल्यवशतः सदा । ततस्ततो नियम्येतदात्मन्येव वशं नयेत् । घेरण्ड संहिता 4/2) नाभि, हृदय, नासिकाग्रभाग, भृकुटी और ब्रह्मरन्ध्र आदि अभीष्ट स्थानों में चित्त को बँधना-स्थिर रखना-धारणा है। (एवं-बन्धशिवत्स्य धारणा । तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम् । - योग दर्शन 3:12) धारणा और ध्यान समाधि के ही अंग हैं और इनकी सिद्धि के बाद समाधि की स्थिति में आत्मा को अपने परमात्म स्वरूप का-चिदानन्द स्वरूप का-साक्षात्कार और अनुभव होता है जिसे हठयोगियों ने शिव और शक्ति के संगम के रूप में निरूपित किया है।

हठयोग-साधना का चरम-परम लक्ष्य षट्कर्म-भेदन द्वारा कुण्डलिनी-जागरण कर सहस्रार में शिव का साक्षात्कार है। इसलिए कुण्डलिनी-जागरण की प्रक्रिया के विवरण के बिना हठयोग-साधना का कोई अध्ययन पूरा नहीं कहा जा सकता। अस्तु इस की दिद्मात्र चर्चा यहाँ अभीष्ट है। मेरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर पायु (मलद्वार) और उपस्थ (मूत्रद्वार) के बीच में लगता है वहाँ स्वयंभूलिंग है जो त्रिकोणचक्र में स्थित है। इसे अग्नि-चक्र भी कहते हैं। इसी अग्निचक्र या त्रिकोण में स्थित स्वयंभूलिंग को तीन वलयों में लपेट कर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है। यह ब्रह्मद्वार-सुषुम्णा- को रोककर सोयी हुई है। मुद्रा-बन्ध के द्वारा नादानुसन्धान तथा जागरण में सहायता मिलती है। नादानुसन्धान प्राणायाम की सिद्धि का परिणाम है। अपानवायु के संकोच से बन्धों की मदद से कुण्डलिनी सुषुम्णा-ब्रह्मरन्ध्र-का मार्ग छोड़ देती है। मूलाधार में ब्रह्मचक्र है। इसमें अग्नि के समान दीप्त शक्ति का ध्यान करने से कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है जिसके बाद स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र का भेदन करते हुए वह सहस्रार में पहुँच जाती है। अमनस्कता के धरातल पर जीवात्मा और परमात्मा-शिव और शक्ति-की अभेदता है। यही हठयोग-सिद्धि है।

मेरे उत्तराधिकारी एवं पट्टशिष्य योगी आदित्यनाथ पर्याप्त स्वाध्याय एवं साधना कर हठयोग के सैद्धान्तिक एवं

व्यावहारिक पक्ष को अपनी इस नयी रचना-हठयोगः स्वरूप एवं साधना - के रूप में गोरक्षपीठ के प्रकाशन विभाग से प्रकाशित करवा रहे हैं यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है। आशा है कि योग-जिज्ञासुगण इस कृति के माध्यम से हठयोग साधना के विभन्न विषयों को आसानी से समझ सकेंगे। योग-साधना सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए हमारे ऋषियों-महर्षियों और महान् योगियों द्वारा प्रचारित विशिष्ट रसायन है जिसका सेवन हर देश, काल, जाति, लिंग, वर्ण, समुदाय, सम्प्रदाय एवं पंथ के लोगों के लिए सुलभ और उपादेय है। भवरोग के इस दुर्लभ रसायन को नये कलेवर में प्रस्तुत कर इसे सर्वसुलभ बनाने के लिये मैं ग्रन्थ लेखक को आशीर्वाद और साधुवाद देते हुए यह मंगल कामना करता हूँ कि वह अपनी परंपरागत सांस्कृतिक थाती को सुरक्षित और समृद्ध करते हुए निरन्तर देश और समाज की सेवा में समर्पित रहे।

शुभंभूयात् ।

श्री गोरक्षनाथ मन्दिर  
गोरखपुर (उ०प्र०)

महन्त अवेद्यनाथ  
गोरक्षपीठाधीश्वर

## प्राक्कथन

“हठयोगः स्वरूप एवं साधना” आप के हाथों में है। योगसाधना के सम्बन्ध में आज भी बहुत सी भ्रान्त धारणाएँ जन-साधारण के बीच प्रचलित हैं। आम जन-मानस योग का सम्बन्ध विरक्त साधु-सन्यासियों के उपयोग तक ही सीमित मानता है। इसी प्रकार हठयोग के सम्बन्ध में भी जन-साधारण में यही भ्रान्त धारणा है कि हठयोग का अर्थ हठात् अर्थात् हठ (विशेष आग्रह) पूर्वक योगाभ्यास करने से है। योग तथा हठयोग से सम्बन्धित इन सभी भ्रान्त धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करने तथा इनसे सम्बन्धित सभी आवश्यक तथ्यों और तत्त्वों से जन साधारण को अवगत कराने के लिए अपने परम पूज्य गुरुदेव गोरक्षपीठाधीश्वर श्री महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज के आशीर्वाद से उन्हीं के निर्देशन में मैंने हठयोग विषयक अपने ज्ञान को “हठयोगः स्वरूप एवं साधना” शीर्षक से एक पुस्तकाकार रूप देने का प्रयास किया है। प्रस्तुत पुस्तक में प्रथम अध्याय योग से सम्बन्धित है जिसमें योग के स्वरूप एवं उसके विविध आयामों की चर्चा की गयी है। द्वितीय अध्याय में हठयोग क्या है? प्रथमतः इसी विषय पर विचार किया गया है तदनन्तर क्रमशः हठयोग के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय अध्याय हठयोग के प्रथम अंग षट्कर्म पर विचार से सम्बन्धित है जिसमें षट् कर्म-धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक तथा कपालभाति का विस्तार से निरूपण करते हुए इनके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्षों के साथ-साथ शारीर एवं मन पर पड़ने वाले इन के प्रभावों को भी उजागर किया गया है। चतुर्थ अध्याय हठयोग के द्वितीय प्रमुख अंग आसनों के निरूपण से सम्बन्धित है जिस में हठयोग के प्रमुख बत्तीस आसनों के साथ-साथ कुल पैंतालिस आसनों पर इनके भौतिक तथा आध्यात्मिक लाभों पर सम्पूर्ण विचार किया गया है। पञ्चम अध्याय हठयोग के तृतीय प्रमुख अंग मुद्रा के विवेचन से सम्बन्धित है जिसमें पच्चीस प्रकार की विभिन्न मुद्राओं का, शरीर की अन्तः स्रावी ग्रन्थियों पर इनके प्रभावों तथा इनके भौतिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व का निरूपण किया गया है। षष्ठ अध्याय हठयोग के चतुर्थ प्रमुख अंग ‘प्रत्याहार’ से सम्बन्धित है। इसमें मन की विभिन्न अवस्थाओं के निरूपण के साथ-साथ इन्द्रियों की बहिर्मुखी स्वाभाविक वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाने पर विचार किया गया है। सप्तम अध्याय में प्रत्याहार की एक प्रमुख क्रिया योग-निद्रा पर इसके महत्त्व को देखते हुए पृथक् रूप से विचार किया गया है। अष्टम अध्याय हठयोग के पाँचवे महत्त्वपूर्ण अंग “प्राणायाम” से सम्बन्धित है। हठयोग की साधना मुख्यतः प्राणायाम से जुड़ी है इसलिए इस अध्याय में जहाँ प्राणायाम की विभिन्न क्रियाओं की और इनके विभिन्न प्रकारों की विवेचना की गयी है वहीं इनके द्वारा मन की सूक्ष्मवृत्तियों पर कैसे आसानी से नियन्त्रण किया जा सकता है इसका भी निरूपण किया गया है। नवम अध्याय हठयोग के छठे महत्त्वपूर्ण अंग “ध्यान” पर केन्द्रित है जिसमें चेतना के विविध आयामों, मन के विभिन्न रूपों के साथ ही “कुण्डलिनी शक्ति” पर भी विचार किया गया है। दशम अध्याय में हठयोग के सप्तम महत्त्वपूर्ण अंग “समाधि” पर विचार किया गया है जिसे हठयोग साधना के सन्दर्भ में “महाबोध” कहते हैं। यहाँ समाधि की विभिन्न अवस्थाओं तथा विभिन्न साधनाओं से प्राप्त अलग-अलग समाधियों की भी चर्चा है। एकादश अध्याय में हठयोग की प्रमुख साधना “नाद-विन्दुसाधना” पर विस्तृत रूप से विचार किया गया है तथा पुस्तक के अन्तिम द्वादश अध्याय में हठयोग-साधना की एक अन्य महत्त्वपूर्ण क्रिया “अजपा-जप” का विस्तार से निरूपण किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखने में जहाँ अपने परम पूज्य गुरुदेव का उपयोगी मार्गदर्शन प्राप्त हुआ वहीं योग-सम्बन्धी विविध ग्रन्थों-शिव संहिता, गोरक्ष-संहिता, घेरण्ड-संहिता, हठयोग प्रदीपिका, सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति, गोरक्ष-शतक और गोरखवाणी आदि से भी आवश्यक जानकारी तथा दृष्टि प्राप्त हुई है। वस्तुतः यह सब कुछ सद्गुरु की कृपा और सद्ग्रन्थों से प्राप्त आलोक का ही प्रतिफल है जिसे मैंने कृतज्ञतापूर्वक प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास मात्र किया है। हठयोग की साधना से सम्बन्धित इस पुस्तक में प्रकाशित विभिन्न चित्र 'महायोगी गुरु गोरक्षनाथ योग-संस्थान' के योग-साधकों के हैं। योग-साधना में रुचि रखने वाले जिज्ञासुओं-सुधीजनों को इस प्रस्तुति से यदि यथेष्ट सन्तुष्टि हो तो मैं अपना प्रयास सफल और सार्थक मानूँगा।

श्री गोरक्षनाथ मन्दिर, गोरखपुर (उ० प्र०)  
चैत्र शुक्ल रामनवमी  
सं० २०५६ वि०

योगी आदित्यनाथ  
उत्तराधिकारी शिष्य गोरक्षपीठ,  
संसद् सदस्य (लोक सभा), गोरखपुर (उ० प्र०)

## योग

योग का भारतीय तत्त्व-चिन्तन और आध्यात्मिक साधना में अनादिकाल से गौरवशाली स्थान रहा है। अतीत की किसी अज्ञात काल से अब तक, संध्या-बन्दना से लेकर समाधि तक, प्रवृत्ति मार्गियों से लेकर निवृत्ति मार्गियों तक, आस्तिकों-नास्तिकों से लेकर विदेशियों तक इसकी व्यापकता, इसकी महत्ता और उपयोगिता के अकाट्य प्रमाण हैं। अर्थात् योग आज की उपभोक्तवादी संस्कृति की देन नहीं अपितु यह उतनी ही प्राचीन है, जितनी भारतीय संस्कृति। इसका विकास उन महान् ऋषि-मुनियों, सन्तों और योगियों के अनुभवों और प्रयत्नों से हुआ, जिन्हें विभिन्न युगों में उत्पन्न करने का श्रेय हमारे देश भारत को है।

योग शब्द “युज्” धातु से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना अर्थात् जो युक्त करे मिलावे उसे योग कहते हैं। इस सम्बन्ध में योग सूत्र के रचनाकार महर्षि पतञ्जलि ने ‘योगः समाधिः’ कहकर योग को समाधि के रूप में परिभाषित किया है अर्थात् कामना, वासना, आसक्ति, संस्कार आदि सब प्रकार की आगन्तुक मलिनता को दूर कर स्वरूप में प्रतिष्ठित होना-जीव का ब्रह्म होना-समाधि है। विभिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न साधनों द्वारा इस लक्ष्य अर्थात् “समाधि” की स्थिति को प्राप्त किया है। भारतीय तत्त्व-चिन्तकों, दार्शनिकों ने आत्मा की पवित्रता के उत्तम साधन के रूप में योग की महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया है। हमें वेद, उपनिषद्, सृतिपुराण, रामायण, महाभारत तथा लगभग सभी धार्मिक ग्रन्थों के साथ-साथ हड्पा, मोहन जोदड़ो तथा मध्य प्रदेश के नर्मदा नदी के तट पर प्राचीन माहिष्मती नगरी के प्राचीन सास्कृतिक अवशेषों में योग-साधना के प्रमाण दृष्टिगोचर होते हैं।

वेद विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। ये मन्त्रदण्डा ऋषियों के अन्तर्ज्ञान के, आत्मसाक्षत्कार के प्रमाण हैं। वेद के प्रत्येक विभाग में योग को किसी न किसी रूप में मान्यता मिली है। वेद के तीन काण्ड हैं 1. कर्मकाण्ड 2. ज्ञानकाण्ड, 3. उपासना काण्ड।

1. कर्मकाण्ड के अनुसार -योग : कर्मसुकौशलम् अर्थात् कर्मो में कुशलता योग है।
2. ज्ञानकाण्ड के अनुसार - संयोगो योग इत्युक्तो जीवत्मपरमात्मनोः अर्थात् जीवत्मा - परमात्मा का संयोग-एकीकरण- योग है।
3. उपासनाकाण्ड के अनुसार - योगः चित्तवृत्ति निरोधः। अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।

समस्त उपनिषदों में किसी न किसी रूप में योग का वर्णन मिलता है। कठोपनिषद् में इन्द्रियों की स्थिर धारणा को योग कहा गया है। इसके अनुसार -

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।  
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥  
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रय धारणाम् ।  
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥

जब पंच ज्ञानेन्द्रियाँ मन सहित आत्मा में स्थिर होकर बैठती हैं, बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती, तब उस अवस्था को परमागति कहते हैं। उसी स्थिर इन्द्रिय-धारणा को योग कहते हैं। उस अवस्था में साधक प्रमाद रहित होता है।

अमृतनादोपनिषद् तथा मैत्रायणी उपनिषद के अनुसार -प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि के रूप में षड्डग्योग का वर्णन मिलता है-

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोथ धारणा ।  
तर्कश्चैव समाधिश्च षड्डग्योग उच्चते ॥

ध्यानविन्दूपनिषद् के अनुसार -

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।  
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ॥

योग कुण्डल्युपनिषद् के अनुसार -

हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः ।  
तयोर्विनष्टे एकस्मिंस्तद्वावपि विनश्यतः ॥

चित्त के दो हेतु हैं- वासना और प्राण। इनसे से किसी एक पर नियंत्रण होने से दोनों नियंत्रित हो जाते हैं।

योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार -मोक्ष प्राप्ति के लिये ज्ञान तथा योग दोनों आवश्यक हैं-

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षो वा भवति ध्रुवम् ।  
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ॥

योग के बिना ज्ञान या ध्रुव मोक्ष भला कैसे हो सकता है? उसी प्रकार ज्ञानहीन योग भी मोक्षकर्म में असमर्थ हैं। योगतत्त्वोपनिषद् में योग के चार विभाग बताये हैं- मंत्रयोगो लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगकः ।। याज्ञवल्क्य जी कहते हैं-

इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् ।  
अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥

यज्ञाचार, दम, अहिंसा, दान और स्वाध्याय, प्रभृति कर्मों में योग के द्वारा आत्मदर्शन ही परम धर्म है।

रामायण तथा महाभारत जैसे ऐतिहासिक महाकाव्यों में भी योग के विभिन्न रूपों का वर्णन मिलता है। अध्यात्म रामायण में कहा गया है-

मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः पुरा मोक्षाप्तिसाधनाः ।  
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वतः ।

महाभारत के जिस भीष्मपर्व में गीता का उपदेश है वहाँ योग के किसी एक स्वरूप को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन है। श्रीमद्भगवद् गीता, अध्यात्मशास्त्र और योगशास्त्र का एक अपूर्व ग्रन्थ है वहाँ प्रत्येक अध्याय ही अपने आप में एक योग है। फिर भी गीता में योग के तीन विभाग मुख्य हैं-

- क. “समत्वं योग उच्यते” अर्थात् सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के बीच चित्त या मन का समान बने रहना
- ख. तत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया अर्थात् चित्त की स्थिरता
- ग. “पश्य मे योगमैश्वर्म्” अर्थात् संयमन सामर्थ्य, प्रभाव ।

गीता में योग शब्द का अर्थ उपयुक्त तीनों में से एक की मुख्यता तथा शेष दो अर्थों की गौणता है। योगवासिष्ठ जो आध्यात्मिक ग्रन्थों में उच्च कोटि का ग्रन्थ है में संसार सागर से पार होने की युक्ति को ही योग कहा गया है। इसमें योग की तीन विधियाँ बताई गई हैं- 1. एक तत्व की दृढ़ भावना, 2. मन की शान्ति और 3. प्राणों के स्पन्दन का निरोध ।

इन तीनों में किसी एक की सिद्धि होने पर तीनों सिद्ध हो जाते हैं।

तत्र में साधना के दो मार्ग बताये गये हैं-

1. भावना द्वारा, 2. कुल-कुण्डलिनी के जागरण द्वारा। कौल-साधना में कहा है-

कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिव उच्चते ।  
कुलाकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयते ॥

“कुल” शब्द शक्ति का वाचक है और “अकुल” शब्द से “शिव” का बोध होता है। ‘कुल’ और ‘अकुल’ के सम्बन्ध को ‘कौल’ अथवा ब्रह्मज्ञान कहते हैं।

योग की इन विशिष्टताओं का वर्णन उपनिषदुत्तर कालीन नास्तिक एवं आस्तिक दर्शन-सम्प्रदायों के अन्दर भी देखने को मिलता है। इन दार्शनिक-सम्प्रदायों में तात्त्विक और वैचारिक रूप से चाहे जो भी मतभेद रहे हों लेकिन उनके आचार-शास्त्रों में योगपरक जीवन-पद्धति की स्वीकृति समान रूप से विद्यमान मिलती है। नास्तिक चावाक ने जहाँ पौराणिक कर्मकाण्ड, वेद और तत्त्व-मीमांसा को आत्मवंचना मानकर उपहास किया है वहीं योग-साधना की क्रियाओं का अगर समर्थन नहीं तो कहीं परिहास भी नहीं किया है।

जैन दर्शन में योग को सम्यक् जीवन का आधार मानकर सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र को मोक्ष के मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया है। बौद्ध दर्शन में क्षणिक और दुःखमय संसार से मुक्त हो जाने के प्रयास को योग-जीवन का आरम्भ माना गया है जिसकी चरम परिणति “समाधि” में होती है।

अतः प्रज्ञा, शील और समाधि को बौद्धों ने योग का परिभाषित स्वरूप माना है।

न्याय-दर्शन के अनुसार आत्मा युक्त शरीर में दुःख का आत्यन्तिक अभाव ही योग की पराकाष्ठा है।

वैशेषिक-दर्शन के अनुसार-मन के आत्मा मात्र में स्थित हो जाने पर मन कर्म के अभाव से आत्मा युक्त शरीर में दुःखानुभव का अभाव ही आत्मा का परमात्मा से संयोग अर्थात् योग है।

सांख्य-दर्शन में पुरुष और प्रकृति की पृथक्ता के ज्ञान को योग कहा गया है। जब पुरुष त्रिगुणत्मिका प्रकृति से ऊपर उठकर अर्थात् जब जीवात्मा मल, विक्षेप तथा आवरण को दूर कर सचिदानन्द परमात्म-स्वरूप को प्राप्त हो जाता है तब इसे सनातनी 'ब्राह्मी स्थिति' कहते हैं। जैनी इसे 'केवली' और बौद्ध 'निर्वाण' कहते हैं।

पतंजलि का दर्शन-सम्प्रदाय तो वस्तुतः योगदर्शन और साधना का ही एक सुविचारित, समन्वित और परिनिष्ठित रूप है। महर्षि पतंजलि ने भारतीय परम्परा में प्रवहमान योग की संस्कृति को एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप प्रदान किया। महर्षि पतंजलि ने "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है ऐसा अपने दर्शन में प्रतिपादित किया है। चित्त की पाँच अवस्थायें होती हैं-

1. क्षिप्तावस्था, 2. मूढावस्था, 3. विक्षिप्तावस्था, 4. एकाग्रता, 5. निरुद्धता। निरुद्धता को प्राप्त करना ही योग का लक्ष्य है। चित्त की विभिन्न अवस्थाओं को रोकने के लिये महर्षि पतंजलि ने तीन तरह के साधन भी बताये हैं- 1. उत्तम अधिकारी के लिये उत्तम साधन, जिसमें अभ्यास, वैराग्य, ईश्वर प्रणिधान आदि हैं। 2. मध्यम अधिकारी के लिये मध्यम साधन, जिसमें तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान आदि हैं तथा 3. अधम अधिकारी के लिये अधम साधन जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ अंग हैं- जिन्हें अष्टाङ्ग-योग के नाम से जाना जाता है।

पूर्वमीमांसा में आचार्य जैमिनि ने वेदविहित कर्मों के आधार पर मोक्ष की प्राप्ति पर बल दिया है। इस में योग साधना का प्रमुख आधार कर्म है। उत्तरमीमांसा में आचार्य शंकर ने ज्ञान को ही योग कहा है। सांख्य जहाँ पुरुष और प्रकृति के वियोग (पृथक्ता के ज्ञान) को योग कहता है, वहीं शंकर वेदान्त में आत्मा-परमात्मा के संयोग को योग माना गया है। वस्तुतः योग-साधना के द्वारा हम अपनी अन्तः और बाह्य प्रकृति पर नियंत्रण स्थापित करके दिव्यता को प्राप्त कर अपने चरम लक्ष्य "मोक्ष" को प्राप्त कर सकते हैं। हमारे तमाम ऋषि-मुनियों, सन्तों, योगियों के इतिहास योग-शक्ति के अद्भुत और चमत्कारिक प्रयोगों से भरे पड़े हैं जिनके बल पर वे त्रिकाल दर्शी, और अष्टसिद्धि, नवनिधि सम्पन्न विभूति के रूप में विख्यात हुये। योग-साधना के द्वारा ही आज मानव समाज को मानसिक-शारीरिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से समुन्नत और स्वस्थ बनाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में श्रुति भी कहती है-

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः ।  
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥ ॥ श्वेताश्वतर उपनिषद्

योगाग्निमय शरीर जिसको प्राप्त होता है, उसे कोई रोग नहीं होता, बुढ़ापा नहीं आता और मृत्यु भी नहीं होती ।

योग-साधना की मुख्यतः अधोलिखित चार प्रसिद्ध शैलियाँ हैं-

1. मंत्रयोग
2. हठयोग
3. लययोग और
4. राजयोग । योग -साधना की उपर्युक्त शैलियों का मूल अष्टाङ्ग-योग है ।

## हठयोग

आध्यात्मिक साधना-जगत् में हठयोग का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह साधना मुख्य रूप से प्राणों की साधना है। यह योग-विद्या आदिनाथ भगवान् शिव से योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ जी को प्राप्त हुई। परम्परा से प्राप्त योग-विद्या को योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ जी ने महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी को दिया और गुरु गोरक्षनाथजी ने त्रिताप से पीड़ित मानवता के कल्याण के लिये इसे जन सामान्य तक पहुँचाया। सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति में हठयोग के सम्बन्ध में महायोगी गोरक्षनाथजी कहते हैं-

**हकारः कीर्तिः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ।  
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते ।**

‘‘ह’’ कार सूर्य स्वर या नाड़ी का द्योतक है और ‘‘ठ’’ कार चन्द्र स्वर है। सूर्य एवं चन्द्र स्वरों के योग से ही ‘‘हठयोग’’ शब्द निष्पन्न होता है। सूर्य स्वर जिसे पिंगला नाड़ी भी कहते हैं पौरुष प्रवृत्ति का प्रतीक है तथा दाहिनी नासिका से प्रवाहित होता है। इसका बीज मंत्र ‘‘ह’’ है। चन्द्र स्वर जिसे इडा नाड़ी भी कहते हैं स्त्रैण प्रवृत्ति का प्रतीक है तथा बायीं नासिका से प्रवाहित होता है। इसका बीज मंत्र ‘‘ठ’’ है।

जब हम श्वास लेते हैं तब सामान्य रूप से दोनों स्वर एक साथ कार्य नहीं करते। कभी एक स्वर चलता है तो कभी दूसरा, लेकिन इसमें कोई सन्तुलन नहीं होता है। हठयोग की साधना से दोनों स्वरों (सूर्य और चन्द्र) में संतुलन स्थापित होता है। जब हमारा दायाँ स्वर चलता है अर्थात् सूर्य नाड़ी चलती है तब हमारे शरीर की प्राण-शक्ति क्रियाशील होती है। अधिकांश शारीरिक क्रियायें, विकास, रक्षण एवं संचालन आदि इसी शक्ति द्वारा सम्पन्न होती हैं। इवसन, पाचन-संस्थान अवयव एवं ग्रन्थि से इसका सीधा सम्बन्ध है। पशु-पक्षियों एवं अन्य जीव-जन्तुओं में यह शक्ति अधिक सक्रिय होती है। इस शक्ति के अधिक सक्रिय होने से प्राणिक शक्ति एवं शारीरिक क्षमता तो बढ़ जाती है, परन्तु मानसिक शक्ति उसी अनुपात में कम होने लगती है। इसी प्रकार जब हमारा बाँया स्वर चलता है अर्थात् चन्द्र नाड़ी चलती है तो चेतना-शक्ति क्रियाशील होती है। मानसिक क्रिया-कलाओं का संचालन इसके माध्यम से होता है। मनुष्य में अन्य प्राणियों की तुलना में इस शक्ति का विकास अधिक होता है। इस शक्ति के अधिक क्रियाशील होने पर शारीरिक क्रिया-कलाओं के प्रति व्यक्ति की उदासीनता तथा प्राणिक क्षमता भी कम हो जाती है। हठयोग की साधना से दोनों शक्तियों (नाड़ियों) में सन्तुलन स्थापित होता है जिसके फलस्वरूप तीसरा स्वर (सुषुम्णा) जागृत होता है- जिसे सुषुम्णा नाड़ी, सरस्वती नाड़ी आदि कहते हैं। हठ-योग में आध्यात्मिक शक्ति-सुषुम्णा-का जागरण आवश्यक होता है।

हठयोग की साधना पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड दर्शन अर्थात् जो कुछ ब्रह्माण्ड में है, वह सब हमारे व्यष्टि शरीर में भी है, इसका प्रतिपादन करती है। स्वयं महायोगी गोरक्षनाथ जी का कथन है कि षट्चक्र, त्रिलक्ष्य, पंच-व्योम, षोडश आधार, नवद्वार, पंचाधिदैव की अपने शरीर में ही विद्यमानता का जिन्हें ज्ञान नहीं है, वे हठयोग के द्वारा किस सिद्धि

की बात करते हैं- हमारा शरीर ब्रह्माण्ड का ही एक रूप है। यद्यपि गोरक्षनाथ जी ने सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति में नवचक्रों का वर्णन किया है तथापि छः चक्रों पर ही हठयोग की साधना आधारित है। उन्हीं के भेदन से साधक सहस्रार में शिव का साक्षात्कार करता है जिनके नाम मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र हैं। इसी तरह षोडश आधार- पादाङ्गुष्ठाधार, मूलाधार, गुदाधार, मेदाधार, उद्दिङ्दयानबन्धाधार, नाभिआधार, हृदयाधार, कण्ठाधार, घण्टिकाधार, तालुकाधार, जिह्वाधार, ध्रूमध्याधार, नासाधार, नासिकामूलाधार और ब्रह्मरन्ध्र आधार हैं। इसी तरह बाह्य और आभ्यन्तर दो लक्ष्य हैं। तीसरा लक्ष्य मध्य भी कहा जाता है। आत्मा के स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए पञ्चाकाश-आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाश-के महत्त्व पर भी यहाँ बल दिया जाता है। एक मुख, दो नेत्र, दो कान, दो नासारन्ध्र, एक उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) एक गुदा शरीर के ये नव द्वार हैं। पाँच अधिदेवता का अभिप्राय आकाश, वायु, तेज, जल, और पृथ्वी से है। ये ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव हैं। हठयोग में इन तत्त्वों का ज्ञान आवश्यक है।

हठयोग तन को स्वस्थ, मन को स्थिर और आत्मा को परमपद में प्रतिष्ठित करने तथा अमृतत्व को प्राप्त करने का अमोघ साधन तथा महाज्ञान है। हठयोग-साधना मानवीय जीवन को सहज और नैसर्गिक प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल संयोजित करने का शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रयोग है। इसमें शरीर-शुद्धि के सात साधन बताये गये हैं -

शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम् ।  
प्रत्यक्षं निर्लिप्तं च घटस्थं सप्त साधनम् ॥

अर्थात् शोधन, दृढता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्तता ये सात साधन हैं जो शरीर में ही स्थित बताये गये हैं। इन में -

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद् दृढः ।  
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता ॥  
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि ।  
समाधिना च निर्लिप्तं मुक्तिरेव न संशयः ॥

अर्थात् शरीर के शोधन के लिए षट्कर्म, दृढता के लिये आसनों का अभ्यास, स्थैर्य के लिये मुद्रायें, धैर्य के लिये प्रत्याहार, लाघव के लिये प्राणायाम, ध्येय के प्रत्यक्ष दर्शनार्थ ध्यान और निर्लिप्तता (आसक्तिहीनता) के लिये समाधि आवश्यक है। इस क्रम से अंभ्यास करने पर अवश्य ही मुक्ति होती है, इसमें संशय नहीं है।

हठयोग में कायाशोधन अथवा घटशोधन या शरीर की शुद्धि एक आवश्यक साधन-तत्त्व है। इसमें षट्कर्म, आसन, मुद्राबन्ध, प्राणायाम की क्रियायें महत्त्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा शरीर योगाग्नि में शुद्ध होकर पकवदेह कहलाता है। षट्कर्म के अंग हैं- धौति, वस्ति, नैति, नौलि, त्राटक और कपालभाति। इनके द्वारा कफ-पित्त-वात के दोष नष्ट होते

हैं। शरीर में ताजगी आती है, आरोग्यता बढ़ती है और शरीर के मल का शोधन होता है। नाड़ियों के शोधन से प्राणवायु का शरीर में सम्पूर्ण संचार होता है। वायु का यथेष्ट धारण, जठराग्नि का प्रदीपन, नाद की अभिव्यक्ति और आरोग्य आदि शरीर के नाड़ियों के शोधन के ही परिणाम है। हठयोग-साधना में आसन, प्राणायाम तथा मुद्रा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। गोरक्ष-संहिता में कहा गया है-

आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम् । द्वितीयशतक

अर्थात् आसनों से शारीरिक और मानसिक रोग तथा प्राणायाम से पाप नष्ट होते हैं। मुद्रा से शरीर और मन की स्थिरता सिद्ध होती है। उसी संहिता में गोरक्षनाथ जी पुनः कहते हैं कि महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड़िडयानबन्ध, जालन्धरबन्ध और मूलबन्ध के अभ्यास में जो योगी कुशल होता है, वह मुक्ति का पात्र होता है।

महामुद्रां नभोमुद्रां उड़िडयानं जालन्धरम् ।  
मूलबन्धं चयो वैति स योगी मुक्तिभाजनः ॥

सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति में कहा गया है- “प्राणायाम इति प्राणस्य स्थिरता” अर्थात् प्राणायाम से प्राण स्थिर होता है। पाँचों इन्द्रियों को अपने विषय से पृथक् कर लेना ही प्रत्याहार है। साधक प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों को तत्तद विषयों से हटाकर आत्माभिमुखी कर देता है। अपने चित्त में आत्मतत्त्व का चिन्तन हठयोग की साधना में ध्यान कहा जाता है। आत्मध्यान से अमरत्व की प्राप्ति होती है। चक्रभेदन करते हुये ध्यान द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत करने से जीवात्मा परम शिव का साक्षात्कार कर लेता है। समाधि में आत्मा के यथार्थ स्वरूप का अनुभव होता है तथा ध्याता, ध्येय और ध्यान तीनों एक हो जाते हैं। इस प्रकार का साक्षात्कार ही समाधि है।

हठयोग का परमलक्ष्य कुण्डलिनी-जागरण द्वारा षट्चक्रभेदन तथा कैवल्य की प्राप्ति है। कुण्डलिनी शक्ति पायु और उपस्थ के बीच मूलाधार चक्र में त्रिकोण के आकार के योनिकामपीठ के मध्य शिवलिंग को साढ़े तीन वलयों में लपेटकर नीचे की ओर मुङ्ह कर विद्युत् की प्रभा के समान चमकती सुषुम्णा के मार्ग को रोककर अप्रबुद्ध और सुप्त रूप में स्थित रहती है। यद्यपि देह में स्थित कुण्डलिनी स्वभाव से चेतन है तथापि प्रबुद्ध न होने की अवस्था तक जीवात्मा को सांसारिक द्वन्द्वों में विमोहित करने के कारण बन्धकारिणी है। जब तक वह सुप्तावस्था है तब तक जन्म-मरण के बन्धन में जीवात्मा भटकता रहता है और जागने पर सहस्रदल तक संचार करती हुई यह साधक को उस के शुद्ध व्यापक आत्मा के स्वरूप का ज्ञान करा देती है। अपानवायु निकुंचन से, मूलबन्ध, उड़िडयानबन्ध और जालन्धरबन्ध के अभ्यास से जब कुण्डलिनी-शक्ति का उत्थान किया जाता है तब वह सुषुम्णा के द्वार को छोड़ कर ऊर्ध्वमुखी होकर षट्चक्रभेदन करते हुए सहस्रार में पहुँच जाती है। मूलाधार में ब्रह्मचक्र है इसमें अग्नि के दीप्त शक्ति का ध्यान करने से कुण्डलिनी जग जाती है। इसके बाद स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध से होकर आज्ञाचक्र का भेदन करते हुये यह सहस्रार में पहुँच कर कुण्डलिनी शिव में अन्तर्भूत हो जाती है। यहीं जीवात्मा का शिव पद में अभिन्न होना हठयोग का परम लक्ष्य है। यहीं उन्मनी सहजावस्था है तथा अमनस्कता के धरातल पर जीवात्मा और परमात्मा की

एकता-अभेदता है।

आज जब विश्व स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति की प्राप्ति के लिये उद्विग्न है तथा इस समस्या का समाधान ढूँढने के लिये भारतीय योग-साधना से प्रेरणा ग्रहण करने के लिये उत्सुक हैं तब ऐसे समय में हठयोग की साधना से मानसिक और शारीरिक आधियों-व्याधियों का समाधान विश्व मानवता का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। हठयोग की साधना सर्वांपूर्ण साधना है। इस साधना के माध्यम से हम न केवल लोक-कल्याण तथा आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं अपितु इस सम्बन्ध में प्रचलित गलत धारणाओं और मनमाने मिथ्या विचारों का निराकरण भी कर सकते हैं।

---

## षट्कर्म

प्रकृति और स्वास्थ्य का अति सन्निकट का सम्बन्ध है। उत्तम स्वास्थ्य प्रकृति के साथ ही प्राप्त हो सकता है। मूल प्रकृति के त्रिगुणात्मक होने से प्राणि मात्र के शरीर भी वात, पित्त और कफ इन त्रिधातुओं के नाना प्रकार के रूपान्तरों के सम्मिश्रण हैं। आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा वात, पित्त और कफ के सन्तुलन से की गई है-

**समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ।  
प्रसन्नात्मेन्द्रियमना: स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ १ ॥**

अर्थात् जब वात, पित्त और कफ सन्तुलित हों, शरीरगत अग्नि सम हो, सप्त-धातु और मल-निष्कासन-क्रिया सम अवस्था में हो तथा पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और आत्मा प्रसन्न हों तब ही मनुष्य स्वस्थ है, ऐसा कहा जाता है।

कुछ शरीर वातप्रधान, कुछ पित्तप्रधान और कुछ कफप्रधान होते हैं। वातप्रधान शरीरों में आहार-विहार के दोष से तथा देश-कालादि हेतु से प्रायः वातवृद्धि हो जाती है, पित्त-प्रधान शरीरों में पित्त-विकृति और कफ-प्रधान शरीरों में प्रायः कफ-प्रकोप हो जाता है जिससे दूषित इलेष्मा, आमवृद्धि या मेद का संग्रह हो जाता है, जबकि शरीर में वात, पित्त, कफ क्रमशः 4:2:1 के अनुपात में हो तभी सम अवस्था मानी जाती है। इस अनुपात में जब भी असन्तुलन होता है तब शरीर में विकार उत्पन्न हो जाता है। इन विकारों के लिये तथा देह को पूर्ववत् स्वस्थ बनाने के लिये जैसे आयुर्वेद में स्नेहन, स्वेदन के अतिरिक्त वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य और अनुवासन ये पंचकर्म बताये गये हैं- वैसे ही हठयोग के आचार्यों ने भी शरीर-शोधन के लिये षट्कर्म बताये हैं। षट्कर्म हठयोग का प्रथम साधन है। इसके द्वारा शरीर के मलों एवं विषाक्त तत्त्वों को दूर किया जाता है। हठयोग की ये 6 क्रियायें जिन्हें षट्कर्म कहते हैं इस प्रकार हैं-

**धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिनौलिकंत्राटकस्तथा ।  
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥**

अर्थात् योग के लिये धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति इन षट्कर्मों का अभ्यास करना चाहिए।

षट्कर्म की इन क्रियाओं द्वारा विभिन्न प्रकार के कफ, वात और पित्त-जनित दोषों को, कण्ठ, प्लीहा, फेफड़े तथा उदर आदि के आन्तरिक विकारों को दूर कर शरीर को पूर्ण रूप से नीरोग रखा जा सकता है। इस कायशोधन से शरीर स्वस्थ रहता है और सभी नाड़ियाँ मलरहित होती हैं। इस प्रकार षट्कर्मों की उपयोगिता केवल शरीर-शोधन में ही नहीं अपितु शोधित शरीर से किये गये योगाभ्यास से कुण्डलिनी-जागरण तथा षट्क्रमभेदन पूर्वक शिव-शक्ति के समरसीकरण की अभीष्ट सिद्धि में भी है। अतः इनका क्रमशः विस्तृत निरूपण आवश्यक है।

1. धौति - धौति शब्द का अर्थ है- धोना या साफ करना। योग-शास्त्र में घटकर्मों के अन्तर्गत मुँह से लेकर गुदा द्वारा तक विधिवत् आन्तरिक सफाई करना धौति क्रिया कहलाती है। काया-शोधन की यह एक महत्वपूर्ण क्रिया है। मुख्य रूप से धौति-कर्म चार प्रकार का माना गया है। यथा-

अन्तधौतिर्दन्त-धौतिर्हृदधौतिर्मूलशोधनम् ।  
धौतिश्चतुर्विधा कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम् ॥

अर्थात् अन्तधौति, दन्त-धौति, हृदयधौति और मूल-शोधन के भेद से धौति-कर्म चार प्रकार का है जिसके द्वारा साधक अपने शरीर को स्वच्छ (स्वस्थ) बनाते हैं। इससे अपच, मलावरोध, अतिसार, संग्रहणी आदि विकार तो दूर होते ही हैं, साथ ही उदरस्थ फोड़ों तक को धौति कर्म से ठीक किया जा सकता है। इन चारों का विवरण इस प्रकार है-

(क) अन्तधौति- इस का शाब्दिक अर्थ है भीतर की सफाई। अतः जिस धौति से शरीर के भीतर प्रक्षालन किया जाता है उसे अन्तधौति कहते हैं। इसके भी चार प्रकार हैं। यथा-

वातसारं वारिसारं वहिनसारं बहिस्कृतम् ।  
घटस्य निर्मलतार्थम् अन्तधौतिश्चतुर्विधा ॥

अर्थात्- वातसार, वारिसार, वहिनसार और बहिस्कृत भेद से अन्तधौति चार प्रकार की होती है।

1. वातसार अन्तधौति - इसमें सिद्धासन, पद्मासन या वज्रासन में बैठ कर दोनों होठों को कौवे की चोंच की तरह करके धीरे-धीरे पेट में वायु भरते हैं। वायुपान करने के बाद कुम्भक (श्वास रोकने की क्रिया) की स्थिति में पेट के अन्दर की वायु का चारों ओर संचालन करते हैं। उसके पश्चात् धीरे-धीरे नासिका से उस वायु को निकाल देते हैं। अन्दर की वायु को चलाने से संबंधित होने के कारण इसे वातसार अन्तधौति कहते हैं। इस क्रिया को काकी-मुद्रा या काकी-प्राणायाम भी कहते हैं।

लाभ- यह क्रिया-

- (क) जठराग्नि को प्रदीप्त करके क्षुधा-वृद्धि कर, मंदाग्नि आदि को दूर करती है।
- (ख) शरीर को सब रोगों से रहित करके स्वस्थ बनाती है।
- (ग) मुँह, जीभ, टन्निसिल आदि गले के रोगों में लाभदायक है।
- (घ) इस क्रिया के सिद्ध होने पर दूर-श्रवण, दूर-दर्शन और आत्मदर्शन की शक्ति प्राप्त होती है।

2. वारिसार अन्तधौति - वारि अर्थात् जल सार अर्थात् चलाना। इस प्रकार मुँह से धीरे-धीरे जल पीने, उसे परिचालित करके जल को गुदा द्वारा से बाहर निकालने की क्रिया को वारिसार अन्तधौति कहते हैं। इससे आँतों की सफाई होती है। यह शंख धौति का एक प्रमुख अंग है।

**शंख-धौति अथवा शंख-प्रक्षालन :** आँतों को पूर्ण रूप से जिस क्रिया से स्वच्छ किया जाता है, उसे शंख-धौति अथवा शंख-प्रक्षालन कहते हैं। इस क्रिया से मुंह से लेकर गुदा तक शरीर की विधिवत् सफाई-धुलाई होती है। चूँकि आँतों की आकृति शंखनुमा होती है इसलिये आँतों को शंख भी कहा जाता है। अतः इस क्रिया से आँतों की सफाई को शंख-धौति अथवा शंख-प्रक्षालन भी कहते हैं। यह काया-कल्प की एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। शरीर-शोधन एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिये इस क्रिया के चमत्कारिक प्रभाव व लाभ प्राप्त हुए हैं। एक प्रकार से यह शरीर रूपी मशीन की सर्विसिंग तथा ओवरहालिंग जैसी क्रिया है जो उस मशीन को नवजीवन प्रदान करती है। इस क्रिया के सम्बन्ध में महायोगी गुरु गोरक्षनाथजी ने कहा है-

आहार तोड़ौ निद्रा मोड़ौ कबहुँ न होइबा रोगी।  
छठै छमासै काया पलटिबा ज्यूँ कोइ बिरला बिजोगी ॥

मिताहार, यथोचित निद्रा और छःछः माह के अन्तर में काया-कल्प के द्वारा शरीर को नीरोग रखते हुये योगी अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त करता है।

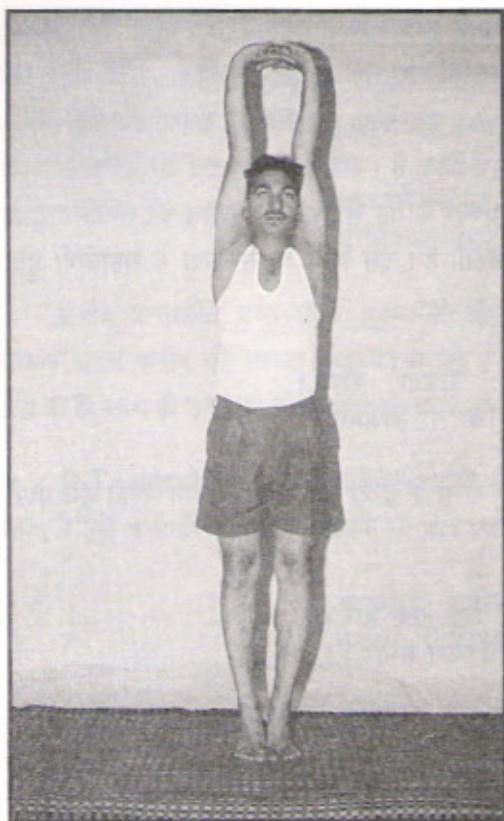
साँस उसाँस बाई को भविबा, रोकि लेहु नव द्वारं।  
छठै छमासे काया पलटिबा, तब उनमनी जौग अपारं ॥

कुम्भक प्राणायाम के द्वारा शरीर के भीतर श्वासोच्छ्वास का भक्षण करना चाहिए। इस कार्य में जितनी अधिक सफलता मिलेगी, उतनी ही प्राणशक्ति अक्षुण्ण होती जायेगी और मृत्यु का भय दूर होता जायेगा। नवों द्वारों को रोक कर वायु को शरीर में पचा लेने से काया-कल्प तो आनायास हो ही जाता है, और साथ ही साथ साल भर में दो बार, छःछः माह की अवधि में योगिक विधि से काया-कल्प करने से शरीर में परिष्कृत ऊर्जस्वल प्राण दौड़ने लगता है। इससे उन्मनी-योग सिद्ध होता है। मन स्थिर हो जाता है, ब्रह्मरन्ध-दशवें द्वार-के खुल जाने पर निष्कल, निरंजन, चिन्मय, परमात्मतत्त्व प्रकाशित हो उठता है। इस तरह उन्मनी अवस्था सिद्ध होती है।

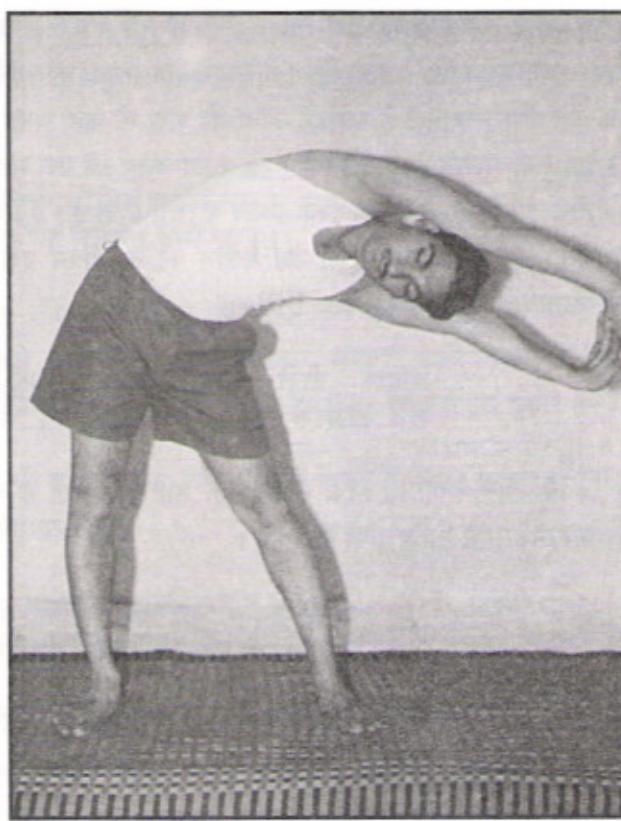
अस्तु जिस दिन शंख-प्रक्षालन करना हो उसके पहले दिन रात्रि में हल्का सुपाच्य भोजन ही लेना चाहिए। रात्रि में पीने के लिये जल का अधिक से अधिक प्रयोग करें। सुबह सूर्योदय से पूर्व नित्य-क्रिया से निवृत्त होने के बाद एक गिलास नमकीन गरम पानी पी कर 5-5 बार निम्नलिखित आसनों का अभ्यास करें-

1. **ताड़ासन-** दोनों पैर मिलाकर खड़े हो जाइए, दोनों हाथ की अँगुलियों को आपस में फँसा कर हथेली को सिर की सीध में ऊपर रखिए। श्वास अन्दर लेते हुए पंजे के बल खड़े हो जाइए तथा हथेली को उल्टा कर के यानी आसमान की ओर रखते हुए पूरे शरीर को ऊपर की ओर तानें। दृष्टि सामने रखें तथा श्वास अन्दर रोक कर (जितनी देर हो सके) फिर श्वास छोड़ते हुए वापस आ जावें। ताढ़ वृक्ष की सी स्थिति के कारण इसे ताड़ासन कहते हैं।

3. **तिर्यक् ताड़ासन-** दोनों पैरों के मध्य एक से डेढ़ फुट का फासला रखते हुए दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस में



ताडासन



तिर्यक् ताडासन

फँसा कर हथेली को सिर के ऊपर सीधा ऊपर उठा कर खड़े हो जाइए। कमर के ऊपर के हिस्से (धड़) को दायीं तरफ झुकायें, फिर पूर्व अवस्था में आकर बायीं ओर इसी प्रकार झुकाइये, हाथ सीधा रखें, मोड़ें नहीं।

3. कटिचक्रासन - दोनों हाथों को सामने सीधे बाजू से फैला कर दोनों पैरों के मध्य 2-3 फुट का फासला रखते हुए खड़े हो जाइए। सर्वप्रथम दाहिने हाथ को सामने से घुमाते हुए बायें कंधे पर रखें और उसी वक्त बायें हाथ को पीछे कमर से घुमाते हुए दाहिनी जाँघ तक ले आयें, सिर को बायें कंधे की ओर ले जाकर कंधे के ऊपर से दाहिने पैर की ऐँड़ी को देखें। इसी तरह वापस पूर्व स्थिति में आकर दूसरी ओर से भी यही क्रिया करें।

4. तिर्यक् भुजंगासन- पेट के बल लेट कर दोनों हथेलियों को अपने दोनों बगल में छाती के समकक्ष रखें। दोनों कोहनियाँ पीठ से लगी हुई हों, सिर जमीन पर रहे, दोनों पैरों के बीच डेढ़ से दो फुट की जगह हो तथा पंजा जमीन से

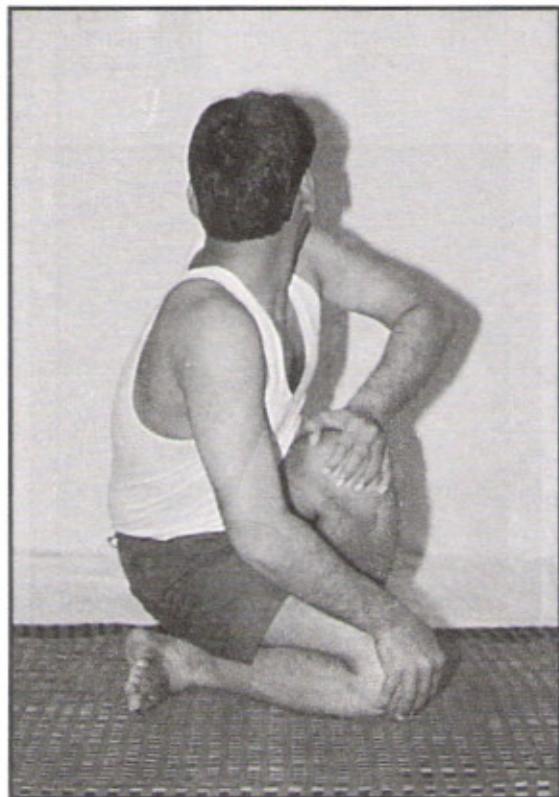


कटिचक्रासन



तिर्यक् भुजंगासन

सुलाकर रखें। श्वास लेते हुए धीरे-धीरे नाभि से ऊपर गर्दन, छाती व सिर को जमीन से ऊपर उठा कर सिर को बायें कन्धे की ओर मोड़ कर दाहिने पैर की ऐंडी को देखने का प्रयत्न करें। सिर को पूर्व की स्थिति में लाकर श्वास छोड़ते हुए सामान्य स्थिति में आ जायें। पुनः इस क्रिया को दूसरी ओर से करें।



**उदराकर्षणासन**

5. **उदराकर्षणासन-** ऐसे बैठें कि दोनों पैरों के बीच कुछ फासला रहे। फिर दोनों हाथ घुटने पर रखें तथा बायें ऐंडी को उठाते हुए घुटने को दाहिने पंजे के पास तक लायें और कन्धे के ऊपर से पीछे की ओर देखने की चेष्टा करें। यही क्रिया स्थिति बदल कर भी करें।

हर 5-5 बार अभ्यास के बाद 1-2 गिलास हल्का गरम नमकीन जल पी लें। लगभग 2 लीटर गरम नमकीन जल पी लेने पर अभ्यास के बाद शौच अवश्य जायें। उसके बाद पुनः गरम नमकीन जल पीकर अभ्यास जारी रखें। 3-4 लीटर जल पी लेने पर शौच की जरूरत महसूस होगी। शौच भी पहले सूखी, फिर गीली, फिर पतली तत् पश्चात्

कण्युक्त जलीय और अन्त में जल के समान साफ होने लगेगी। नमकीन गरम जल का अभ्यास तब तक जारी रखना चाहिए, जब तक शौच पानी की तरह नहीं आने लग जाय। इसके बाद 5-7 गिलास साफ गरम जल पीकर कुंजर क्रिया कर लेनी चाहिए। तत् पश्चात् एक घण्टे तक कुछ भी सेवन न करें। एक घण्टे के बाद शुद्ध देशी धी में पकाई हुई मूँग की दाल की खिचड़ी का सेवन स्वेच्छानुसार करें। लगभग 3-4 घण्टे पूरी तरह आराम करने के बाद अन्न-जल का सेवन करें। 3-4 घण्टे तक सोयें भी नहीं। लगभग एक सप्ताह गरिष्ठ भोजन (भारी भोजन), चाय तथा नशीले मादक पदार्थों का भी सेवन नहीं करना चाहिए।

#### लाभ - यह क्रिया -

1. शरीर-शोधन की उत्तम क्रिया है और सभी प्रकार के रोग दूर करने में सक्षम है।
2. कब्ज, मंदाग्नि को दूर कर आँतों के साथ मांस पेशियों को भी सक्रिय एवं मजबूत बनाती है।
3. रक्त के शुद्धीकरण में सहायक है।
4. मधुमेह, श्वास रोग, अपेन्डिसाइटिस, सिरदर्द, मुख, आँख, गला, जिह्वा और दन्त रोगों में लाभकारी है।

#### विशेष -

1. सामान्यजनों को तीन या छः माह में एक बार इसका अवश्य अभ्यास करना चाहिए।
2. मधुमेह के रोगियों को पन्द्रह दिन में एक बार इसका अभ्यास करना चाहिए।
3. कुष्ठ रोगियों को सप्ताह में दो दिन इसका अभ्यास करना चाहिए।
4. बहुत कमजोर व्यक्ति, प्रसूता महिला, गुर्दे, अल्सर, ऊँचे या नीचे रक्तचाप तथा हृदय के रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

#### 3. वहिनसार अन्तर्धौति (अग्निसार धौति)

वज्रासन में बैठकर अथवा थोड़ा सामने झुके हुए खड़े होकर प्राण वायु को रोककर नाभि को मेरु के पृष्ठ भाग में लगायें तथा फिर फुलायें। इससे सभी उदर रोग नष्ट होते हैं और जठराग्नि तीव्र होती है।

#### 4. बहिष्कृत अन्तर्धौति

यह क्रिया वातसार अन्तर्धौति के समान ही है। इसमें कौवे की चोंच की तरह मुख बनाकर इतनी मात्रा में वायु पीते जायें की पेट पूरी तरह भर जाये, फिर अन्तर्कुम्भक द्वारा यथा सामर्थ्य वायु को पेट में ही धारण करके रखें, पश्चात् इसे गुदा से बाहर निकालना चाहिए। इससे नाड़ियों का शुद्धीकरण होता है।

#### सावधानी-

1. यह क्रिया कठिन है, तथा ठीक से अभ्यास न होने पर वायु कुपित होने की अधिक सम्भावना होती है। इसलिए किसी जानकार के निर्देशन में ही करें।
2. इस क्रिया के अभ्यास में अन्तर्कुम्भक के साथ जालन्धर बन्ध अवश्य लगायें।

**दन्त-धौति-** मुख के अन्दर या बाहर के भागों को धोकर साफ व स्वस्थ रखने की क्रिया को दन्तधौति कहते हैं। यह पाँच प्रकार की होती है-

दन्तमूलं जिह्वामूलं रन्धं च कर्णयुग्मयोः ।  
कपालरन्धं पंचैतैः दन्तधौतिर्विधीयते ॥

**अर्थात्-** दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध (दोनों कानों के रन्धों से होने वाली दो धौति हैं) तथा कपाल रन्ध इन पाँचों से दन्तधौति होती है।

**1. दन्तमूलधौति-** इसमें प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल नीम की टहनी से दाँतों की सफाई तथा हाथ की तर्जनी अँगुली से मसूड़ों को खूब रगड़ते हैं (सभी प्रकार के दन्त रोग, पाइरिया आदि में लाभ होता है) अथवा सेन्ध्या नमक व सरसो का तेल मिलाकर दाँत एवं मसूड़ों की मालिश दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली से खूब रगड़ते हुए करनी चाहिए, उसके बाद गाय के मक्खन से बार-बार जिह्वा का मार्जन तथा दोहन करना चाहिए।

**लाभ :** इस से-

1. कफ-दोष का निवारण होता है।
2. जिह्वा का दोहन करने से वाक्षक्ति तथा स्वादशक्ति की क्षमता बढ़ती है।
3. कर्णरन्ध-धौति- दोनों हाथों की तर्जनी अथवा अनामिका अँगुलियों से दोनों कानों के छिद्रों की मालिश व सफाई करना कर्णरन्धधौति कहलाती है।

**लाभ:** इससे-

यह श्रवण शक्ति को बढ़ाती है तथा इस से शरीर में व्याप्त नाद की साधना करने में सुगमता रहती है।

**4. कपालरन्ध-धौति-** दाहिने हाथ के अँगूठे या अँगुली से खोपड़ी के मध्यम में कपालरन्ध की जल या किसी विशिष्ट तेल से मालिस करने की क्रिया कपालरन्ध धौति कहलाती है। यह क्रिया मध्याह्न काल तथा सायंकाल में होती है।

**लाभ:** इस क्रिया से-

1. कफ-दोष का निवारण होता है।
2. शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की पवित्रता प्राप्त होती है।

**हृदधौति -** हृदय का शोधन जिस क्रिया से होता है उसे हृदय या हृदयधौति कहते हैं। मानसिक शुद्धि के लिये हृदय की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना न तो योगसाधना हो सकती है और न ही तृष्णा, ममता और वासना के बन्धन से छुटकारा मिल सकता है। हृदय में साक्षात् विष्णु का निवास बताया गया है। इसके शोधन की मुख्य तीन क्रियायें हैं-

“हृदधौतिं त्रिविधं कुर्याद् दण्डवमन वाससा”। अर्थात् दण्ड आदि तीन साधनों के कारण हृदय धौति के तीन भेद

हैं- दण्डधौति, वमनधौति और वसनधौति ।

1. दण्डधौति- केले के दण्ड, चिकने बेंत के दण्ड, हल्दी अथवा वटवृक्ष की जटा जिसकी मोटाई १ सेमी० तथा



**दण्डधौति**



**वमनधौति**

लम्बाई लगभग २ फुट तक हो- को अन्न की नली के रास्ते धीरे-धीरे हृदयस्थल तक प्रविष्ट कर थोड़ी देर सावधानी से दण्ड को चारों ओर घुमा कर धीरे-धीरे ही बाहर निकालने की क्रिया दण्ड-धौति अर्थात् दण्ड से हृदय की सफाई कहलाती है । दण्ड यदि मुलायम न हो तो उसमें गाय का मक्खन अवश्य लगा लेना चाहिए । यह क्रिया भोजन से पूर्व ही करनी चाहिए ।

**लाभ-** इस क्रिया से-

1. कफ और पित्त आदि मल बाहर निकल जाते हैं ।
2. फेफड़े व हृदय रोगों जैसे श्वास, दमा आदि में लाभ होता है ।
3. घबड़ाहट आदि तमाम दोष शान्त हो जाते हैं ।
  
2. **वमनधौति-** प्रातः काल अथवा भोजन करने के 3-4 घण्टे बाद गर्म नमकीन जल तब तक पीयें जब तक जल कंठ तक न भर जाय और जल पीने की गुंजायश बिल्कुल न रह जाय । फिर उकड़ूँ बैठ कर अथवा खड़े होकर थोड़ा सामने लगभग 120 अंश झुक कर दाहिने हाथ की दो अँगुलियों को जिहवामूल में प्रविष्ट कर धीरे-धीरे रगड़ना

चाहिए। नये अभ्यासी बायें हाथ से पेट को दबायें और दाहिने हाथ की अँगुलियों से छोटी जीभ पकड़ें। उदरस्थ सारा जल बाहर आ जायेगा। इससे आमाशय, अन्न- नली और गले की धुलाई हो जाती है। उच्च रक्तचाप वाले रोगी, वात रोगी, हृदय व फेफड़े के कमजोर रोगी को यह क्रिया नहीं करनी चाहिए। सामान्य साधक को सप्ताह में एक बार, पित्त एवं कफ के रोगी को सप्ताह में दो बार तथा दमा के रोगी को कुछ दिन तक नित्य करना चाहिए।

**लाभ-** इस से-

1. वात, पित्त एवं कफ से सम्बन्धित रोग दूर होते हैं।
2. अम्लपित्त, अल्सर, खट्टी डकार आदि विकार दूर होते हैं।
3. दमा तथा श्वासरोग में आराम पहुँचता है।



**वस्त्रधौति**

3. वसनधौति अथवा वस्त्रधौति- प्रातः: काल भोजन करने के पूर्व 5-6 सेमी० चौड़ा 8 मी० लम्बा महीन से महीन नया कपड़ा गोल लपेट कर नमकीन गरम जल में भिगोकर एक बर्तन में रख दें। कपड़े के एक सिर को मुँह में डालकर लार से अच्छी तरह मिलाकर धीरे-धीरे निगलें। प्रथम दिन एक फुट, दूसरे दिन दो फुट और तीसरे दिन तीन फुट वस्त्र अन्दर ले जायें क्रमशः अभ्यास बढ़ावें। ध्यान रहे कि एक-दो फूट वस्त्र बाहर दाँत से पकड़ कर रखें। वस्त्र अन्दर जाने पर नौलि क्रिया करें। फिर धीरे-धीरे वस्त्र को बाहर निकालें। अगर कठिनाई हो तो जल की मदद से निकालें। ध्यान रहे वस्त्र को 10-15 मिनट से ज्यादा अन्दर नहीं रखना चाहिए। यह क्रिया भोजन के पूर्व करनी चाहिए और क्रिया के एक घण्टे के बाद भोजन या नाश्ते में गाय के धी का अधिक से अधिक प्रयोग करें।

**लाभ- इस से-**

1. गुल्म, ज्वर, प्लीहा, कुष्ठ एवं कफ, पित्त आदि विकारों का शमन होता है।
2. हृदय-शोधन की क्रिया होने से यह मन की एकाग्रता में सहयोगी है।
3. दमा, श्वासरोग, कुष्ठरोग में लगातार इसका अभ्यास करें। अल्सर रोगी परामर्श लेकर ही करें। वस्त्र को बाहर निकालते समय वस्त्र के अन्तिम भाग में अम्ल अधिक होने पर गले में खरखराहट, जलन आदि होने का भय रहता है। अतः ऐसी स्थिति आने पर जल अधिक पियें।

**मूल-शोधन (गणेश-क्रिया)-** अपानवायु को कुपित होने से रोकने के लिये, मलावरोध आदि के निवारण के लिये जिस क्रिया का उपयोग किया जाता है उसे मूल-शोधन अथवा गणेश-क्रिया कहते हैं। इस क्रिया में कच्ची मूली की जड़ अथवा हल्दी की जड़ के चूर्ण को जल में मिलाकर मध्यमा अँगुती से गुदा मार्ग की सफाई जल के साथ की जाती है। हल्दी रक्त शोधक होने के कारण लाभदायक है।

**लाभः इस से-**

1. जठराग्नि प्रदीप्त होती है।
2. बवासीर (अर्शरोग) में लाभ होता है।
3. आमजनित या कफ एवं अजीर्ण जनित रोग उत्पन्न नहीं होते और शरीर की पुष्टि तथा कान्ति में वृद्धि होती है।
4. वीर्य दोष भी दूर होते हैं।

**वस्ति:**

यह षट्कर्म के अन्तर्गत शरीर-शोधन की दूसरी क्रिया है। वस्ति शरीर में मूलाधार के समीप नाभि के नीचे वाले (पेड़ू) भाग को कहते हैं जहाँ मूत्राशय है और इस वस्ति प्रदेश की सफाई जिस क्रिया से होती है, उसे स्थान के कारण वस्ति कहते हैं। इस क्रिया को अंग्रेजी में एनिमा भी कहते हैं।

**जलवस्ति: शुष्कवस्तिर्वस्ति: स्पाद् द्विविद्यास्मृता ।**  
**जलवस्तिर्जले कुर्वात् शुष्कवस्ति: सदा क्षिती ॥**

अर्थात् वस्ति क्रिया दो प्रकार की होती है-

1. जलवस्ति जल में तथा 2. शुष्कवस्ति भूमि पर की जाती है। शुष्कवस्ति को पवन-वस्ति भी कहते हैं

1. **जलवस्ति-** एक चिकनी नली को गुदा में डालकर नैलि-कर्म की सहायता से वस्ति में जल को चढ़ाया और निकाला जाता है। इसके लिये एनिमा लेना अपेक्षाकृत आसान विधि है। इससे आँतों में जमा मल घुल कर पतला होकर निकल जाता है। जल चढ़ाने के पूर्व सिरिंज द्वारा गुदा में तेल चढ़ाना उपयोगी बताया गया है। एनिमा न उपलब्ध हो तो गिलसरीन की बत्ती चढ़ाने से भी मल तथा आँव के निष्कासन में आसानी होती है। रोग के अनुसार वस्ति में

तरह-तरह के क्वाथों (काढ़ों) को चढ़ाने की बात भी बतायी गयी है। परन्तु सामान्य रूप के कवोण्ण (गुनगुने) जल में साबुन और लवण अथवा पोटैशियम परमैग्नेट मिलाने की बात ही बतायी गयी है।

**विधि-** किसी बड़े टब (बड़ा जलपात्र विशेष) में, किसी नदी या सरोवर में नाभि तक जल में उत्कटासन में बैठ कर गुदा मार्ग का आकुंचन और प्रसारण (सिकोड़ने-फैलाने की क्रिया) करें। नली अथवा सिरिंज द्वारा जल अन्दर चढ़ा कर मूलबन्ध वस्ति प्रदेश को नौलि क्रिया द्वारा चालित कर भीतर चढ़ाये गये जल को बाहर निकाल सफाई का यह काम किया जाता है।

**लाभ-** इस से-

गुल्म, प्लीहा, उदर-रोग तथा वात, पित्त और कफ का दूषित रूप में बनना नष्ट हो जाता है।

2. **स्थल-वस्ति-** जमीन पर पश्चिमोत्तान आसन में बैठकर आश्वनी मुद्रा के द्वारा गुदा का आकुंचन और प्रसारण करने की क्रिया स्थलवस्ति कहलाती है।

**लाभ:** इससे-

1. कब्ज दूर होता है।
2. गठिया आदि रोग दूर होते हैं।
3. जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

**सावधानी-**

1. नौलि क्रिया तथा स्थलवस्ति के ठीक अभ्यास के बाद ही जलवस्ति का अभ्यास करना चाहिए। अन्यथा उदर में प्रविष्ट हुआ सम्पूर्ण जल बाहर नहीं आ पायेगा और उसके बाहर न आने से धातुक्षय आदि नाना दोष होने की सम्भावना रहती है।
2. जलवस्ति के तुरन्त बाद भोजन अवश्य करें जिससे वृहद् आंत्र में बचा हुआ जल का अंश धीरे-धीरे मूत्र द्वारा बाहर आ जायेगा। भोजन नहीं करने की स्थिति में दूषित जल आँतो से सम्बद्ध सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा शोषित रक्त में मिल जायेगा और रक्त को दूषित करेगा।
3. जलवस्ति के लिये शुद्ध जल का ही प्रयोग करना चाहिए। अधिक गरम जल तथा अधिक शीतल जल का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
4. राजयक्षमा (क्षय), संग्रहणी, अधोरक्तपित्त, भगन्दर, मलाशय और गुदा में शोथ, आंत्र सन्निपात, कफ-वृद्धि जनित तीक्ष्ण श्वास प्रकोप में वस्ति क्रिया नहीं करनी चाहिए।

### नेति

नेति

विभिन्न द्रव पदार्थों द्वारा नासिका मार्ग की सफाई करने की क्रिया को नेति कहते हैं। यह षट्कर्म की तीसरी

क्रिया है। यह नाक, कान, कण्ठ और मस्तिष्क से सम्बन्धित रोगों में लाभदायक है। जलनेति, सूत्रनेति, दूधनेति, तेल या घृतनेति आदि भेद से यह अनेक प्रकार की होती है।



**जलनेति**

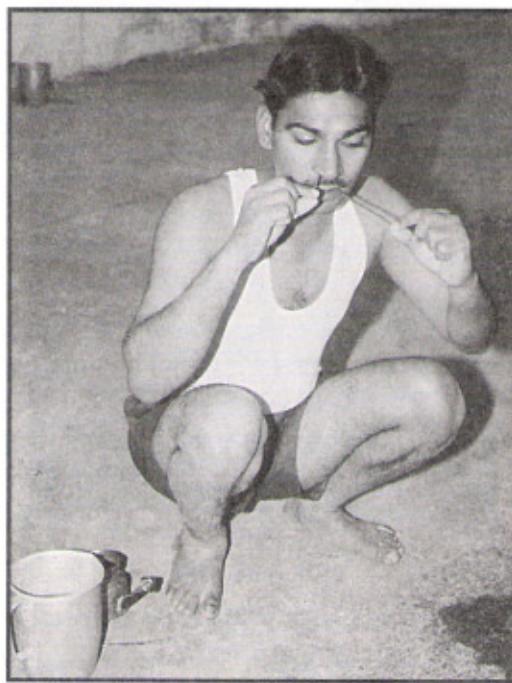
1. **जलनेति-** गुनगुने जल में आवश्यकतानुसार नमक मिलाकर एक टोटीनुमा लोटे में जल भर कर सिर को थोड़ा झुका कर ऊपर वाली नासिका में लोटे की टोटी को लगाकर जल डालते हैं। जल दूसरी नासिका से अपने आप बाहर आ जायेगा। इस क्रिया में यह ध्यान विशेष रूप से रहे कि इवास नासिका से न लेकर थोड़ा मुँह खोलकर रखें, ताकि आवश्यकतानुसार इवास अन्दर बाहर हो सके। इसी क्रिया को क्रमशः दूसरी नासिका से भी करते हैं। इसके बाद भस्त्रिका नेति अवश्य करें।

#### **लाभ- यह-**

1. आँख, कान, नाक, गला, दाँत एवं मस्तिष्क से सम्बन्धित रोगों को दूर करता है।
2. चर्मरोग में लाभ पहुँचाता है।
3. मानसिक तनावों को दूर करता है।
4. सिरदर्द, खाँसी, जुकाम, नजला (सर्दी), नाक में फोड़े, फुँसी आदि में लाभ पहुँचाता है।
5. सुषुम्णा नाड़ी को जाग्रत करता है।

## सावधानी-

1. नये अभ्यासियों को शुरू में ही शीतल जल प्रयोग नहीं करना चाहिए। शुरू में ही शीतल जल का प्रयोग करने से सर्दी, जुकाम, सिर का भारीपन इत्यादि कष्ट हो जाते हैं।
2. नज़ला, जुकाम होने पर नमकीन गरम जल से ही नेति क्रिया करनी चाहिए।
3. जलनेति के बाद भस्त्रिका-नेति अवश्य करनी चाहिए अन्यथा कालान्तर में जल वाष्प बनकर फेफड़े में प्लुरिसी आदि रोग उत्पन्न कर सकता है।

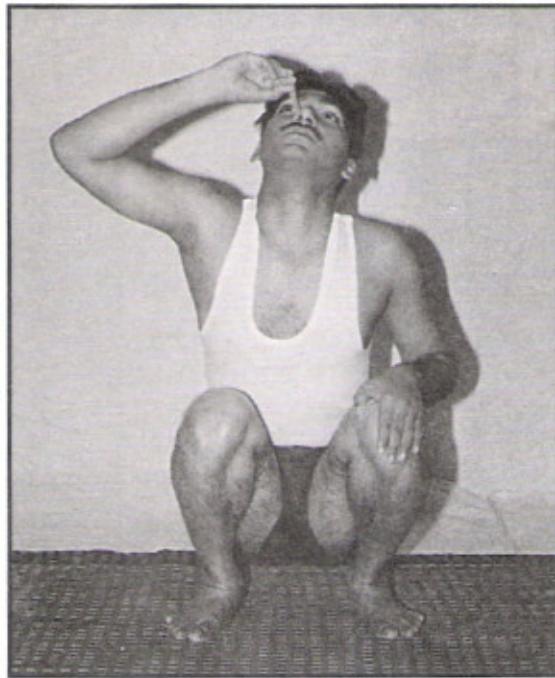


**सूत्रनेति**

2. **सूत्रनेति-** मुलायम धागे की रस्सी या रबर की कैथेटर नं० 4 को गरम जल से धोकर धीरे-धीरे एक नासिका छिद्र में डालकर गले के पास आने पर दायें हाथ की दो अँगुलियों से कैथेटर या सूत्र को मुंह से धीरे-धीरे बाहर निकाल कर सूत्र या कैथेटर के एक-एक कोने को दोनों हाथों से पकड़ कर 8-10 बार अन्दर बाहर करके धीरे-धीरे मुंह से बाहर निकाल लेना चाहिए। इसके बाद घृतनेति अवश्य करनी चाहिए।

## लाभ- यह-

1. सिरदर्द, खाँसी, जुकाम, नाक में फोड़े-फुंसी आदि में लाभ पहुँचाता है।
2. नाक के अन्दर मास वृद्धि को रोककर नाक को खोलता है।



### घृतनेति

3. घृतनेति/कपालनेति- किसी आसन पर बैठकर अथवा कुर्सी पर बैठकर अथवा चारपाई पर लेटकर सिर को पीछे लटका कर द्वापर द्वारा बारी-बारी से प्रत्येक नासिका छिद्र से 8-10 बूँद ताजा गाय का घृत डालने की क्रिया को घृतनेति कहते हैं। यही क्रिया तेल से करने पर तेलनेति, दुग्ध से करने पर दुग्धनेति कहलाती है अथवा नासिका से दुग्धपान करना ही दुग्धनेति कहलाती है। मुँह में पानी भर कर नासिका के छिद्रों से निकलने की विधि को कपालनेति कहते हैं।

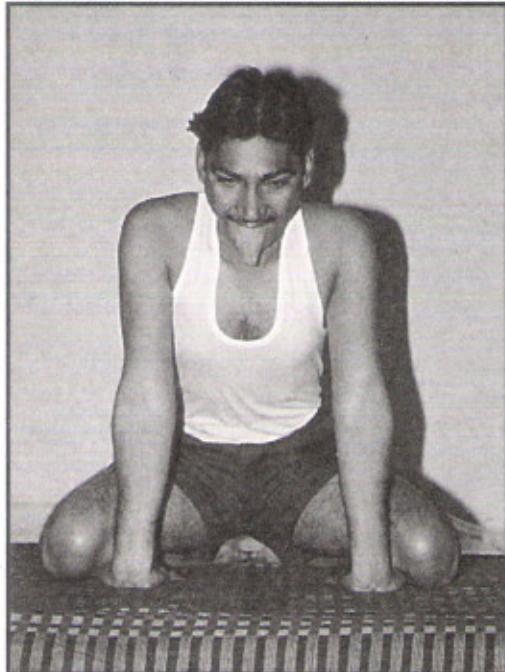
#### लाभ- यह-

1. आँख, नाक, कान, गला एवं मस्तिष्क के सभी रोगों में लाभ पहुँचाता है।
2. सिर दर्द, खांसी, जुकाम, नाक में फोड़े-फुंसी को दूर करता है।
3. मिर्गी, चक्कर, स्मरणशक्ति की कमी आदि में लाभदायक है।
4. दुग्धनेति बालों की सुरक्षा में सहायक होती है। बाल सफेद नहीं होते हैं, झड़ते नहीं हैं।

### नौलिका या नौलि-क्रिया

हठयोग के षट्कर्मों की यह चतुर्थ तथा उत्तम क्रिया है। यह क्रिया उदर-रोगों को दूर करने में प्रभावकारी सिद्ध हुई है। सुगमता से करने के लिये इसे छः भागों में बाँटा जा सकता है। सबसे पहले सीधे खड़े होकर दोनों पैरों के बीच

डेढ़-दो फुट का अन्तर रखें। धड़ को थोड़ा सामने झुका कर दोनों हाथों को घुटने से ऊपर बाँध कर रखना चाहिए। इसके मध्य, दक्षिण और वाम आदि कई भेद हैं।



अग्निसारक्रिया



उडीयानबन्ध

**अग्निसारक्रिया-** वज्रासन में बैठकर दोनों घुटनों के बीच दूरी बढ़ा कर दोनों हाथों की हथेलियों को पेट की ओर उल्टा कर के दोनों घुटनों के बीच रखें। जालन्धर बन्ध लगाकर पेट को अधिक से अधिक क्रमशः पिचकायें-फैलायें (फुलायें) अर्थात् नाभि प्रदेश का आकुंचन और प्रसारण जल्दी-जल्दी करें। यह क्रिया जितनी देर आसानी से कर सकते हैं करें तत् पश्चात् इवास लें।

लाभ- यह-

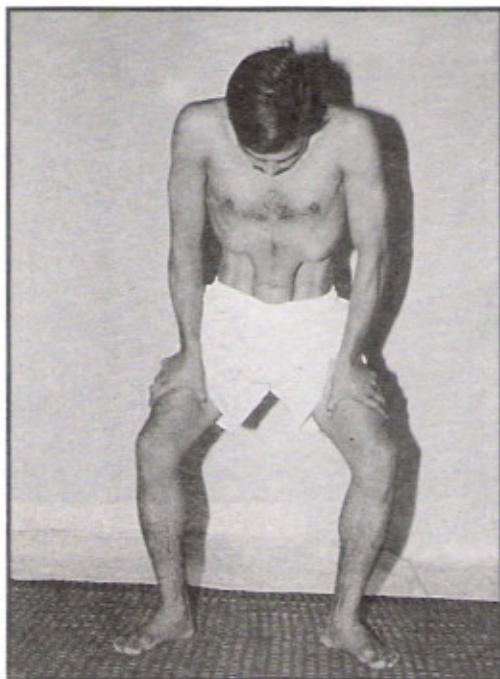
1. उदर की मांसपेशियों को लचीली बनाती हैं तथा इससे मांसपेशियों व नसनाड़ियों पर नियंत्रण प्राप्त होता है।
2. उदर सम्बन्धी विकारों को दूर कर पाचन-शक्ति बढ़ाती है।

**उडीयानबन्ध-** सीधे खड़े होकर दोनों पैरों के बीच एक-डेढ़ फुट का फासला रखें आगे झुकते हुये दोनों हाथों को घुटनों के ऊपर जाँघ पर रखकर रेचक करके इवास बाहर निकालें और बहिष्कुम्भक करें। पेट को अन्दर की ओर इतना खींचें कि पीठ से सट सा जाय। जितनी देर रुक सकते हैं, रुकने के बाद धीरे-धीरे पेट को ढीला छोड़ने पर

इवास धीरे-धीरे लें ।

लाभ- यह-

1. आँतों के रोगों में लाभ पहुँचाता है ।
2. कब्ज तथा गैस्टिक को दूर करता है ।



**मध्य-नौलि**



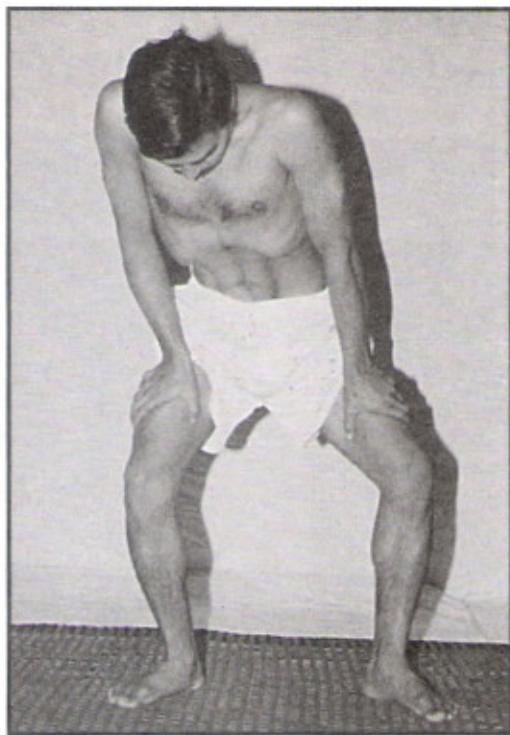
**दक्षिण-नौलि**

**मध्य-नौलि** - उड़ीयानबन्ध के अभ्यास के बाद पेट के मध्य मांसपेशियों की नाल जैसी शक्ति उभरती है । इसे मध्य-नौलि कहते हैं ।

**दक्षिण-नौलि** - इसी नौलि को बायें हाथ के दबाव को कम करके पेट के दाहिनी ओर निकालना दक्षिण-नौलि कहलाती है ।

**वाम-नौलि** - मध्य-नौलि को दाहिने हाथ के दबाव को कम करके बायीं ओर निकालने की क्रिया को वाम-नौलि कहते हैं ।

**चक्र-नौलि** - नौलि को बायें से दायें और दायें से बायें वर्तुलाकार घुमाने की क्रिया को चक्र-नौलि कहते हैं ।



**वाम-नौलि**



**चक्र-नौलि**

**ताभ-** यह-

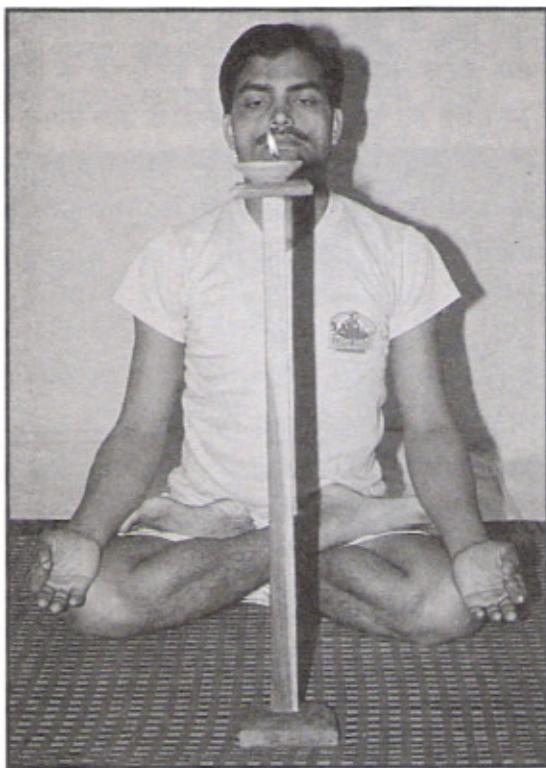
1. उदर सम्बन्धी वात, तिल्ली, मंदाग्नि, आमवात, पेट का कड़ापन, कब्ज आदि रोग दूर करती है।
2. औँतों को सक्रिय स्वस्थ एवं मजबूत बनाने की उत्तम क्रिया है।
3. प्राण-अपान वायु का योग कराने वाली कुण्डलिनी-योग की महत्त्वपूर्ण क्रिया है।

**सावधानी -**

1. पेट के अल्सर, शल्य-क्रिया, गर्भकाल और उपवास में इस क्रिया का अभ्यास वर्जित है।
2. अभ्यास प्रातः काल खाली पेट षट्कर्म की अन्य क्रियाओं से पूर्व करना चाहिए।

### **त्राटक**

किसी लक्ष्य विशेष को एकाग्रता के साथ आँसू निकलने तक अपलक देखने की क्रिया को त्राटक कहते हैं। यथा-



**त्राटक**

निरीक्षेन्निश्चलदशा सूक्ष्म-लक्ष्यं समाहितः ।  
अशुसम्पात-पर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम् ॥

त्राटक क्रिया तीन प्रकार की होती है-

1. अन्तः त्राटक
2. मध्य-त्राटक
3. बाह्य-त्राटक

1. अन्तः त्राटक- हृदय अथवा भ्रूमध्य में नेत्र बन्द रख कर एकाग्रता पूर्वक धारणा शक्ति को बढ़ाने की क्रिया को अन्तः त्राटक कहते हैं। भ्रूमध्य में त्राटक करने से आरम्भ में कुछ दिनों तक कपाल में दर्द तथा नेत्रों की बरानियों में चंचलता की शिकायत हो सकती है। परन्तु कुछ दिनों के अभ्यास के बाद नेत्रवृत्ति में स्थिरता आ जाती है।

2. मध्य-त्राटक- जब त्राटक क्रिया का अभ्यास देवमूर्ति, सफेद कागज में काला बिन्दु अथवा ऊँ, मोमबत्ती अथवा

तिल के तेल की अचल बत्ती अथवा धातु की मूर्ति, नासिका के अग्रभाग या समीपवर्ती किसी अन्य लक्ष्य पर दृष्टि रखकर की जाती है तब उसे मध्य-त्राटक कहते हैं। इस क्रिया को करने के लिये किसी भी आसन (पदमासन, सिद्धासन या स्वस्तिकासन) में बैठकर एक डेढ़ फुट की दूर पर आँखों के ठीक सामने किसी स्टैण्ड में एक दीपक (तिल के तेल आदि से युक्त) रखते हैं। अपलक नेत्रों से दीपक की लौ को तब तक देखते हैं जब तक आसानी से देख सकें। आँखों से आँसू आने पर आँखें बन्द करके दीपक की लौ को भूमध्य में धारण करें। कुछ देर बाद पुनः इस क्रिया को दुहरायें। धीरे-धीरे अभ्यासकाल बढ़ाते जायें। यह क्रिया देवमूर्ति, सफेद कागज पर काला बिन्दु अथवा ऊँ आदि समीपवर्ती लक्ष्य पर भी की जा सकती है।

3. बाह्य-त्राटक- जब त्राटक क्रिया का अभ्यास किसी दूरवर्ती लक्ष्य पर यथा-चन्द्र, प्रकाशित नक्षत्र, पर्वत के तृणाच्छादित शिखर आदि पर क्रिया जाता है, तब उसे बाह्यत्राटक कहते हैं। केवल सूर्य पर त्राटक नहीं करना चाहिए क्योंकि सूर्य और नेत्र ज्योति में एक ही प्रकार की शक्ति होने से नेत्र-शक्ति सूर्य में आकर्षित होती रहेगी जिससे नेत्र कुछ ही दिनों में कमजोर हो जायेगे। यदि सूर्य पर त्राटक करना हो तो जल में पड़े हुए सूर्य के प्रतिबिम्ब पर अभ्यास क्रिया जा सकता है।

#### लाभ-यह

- स्मरण-शक्ति, धारणा-शक्ति, अतीन्द्रिय क्षमता को बढ़ाता है।
- मन की हलचल को शान्त, स्थिर तथा अन्तर्मुख करता है।
- दिव्य-दृष्टि तथा सम्मोहन-शक्ति पैदा करने में सहायक है।
- उच्च आध्यात्मिक क्रियाओं के लिये पृष्ठभूमि तैयार करता है।
- शास्त्रभवी-मुद्रा की सिद्धि में सहायक है।

#### सावधानी-

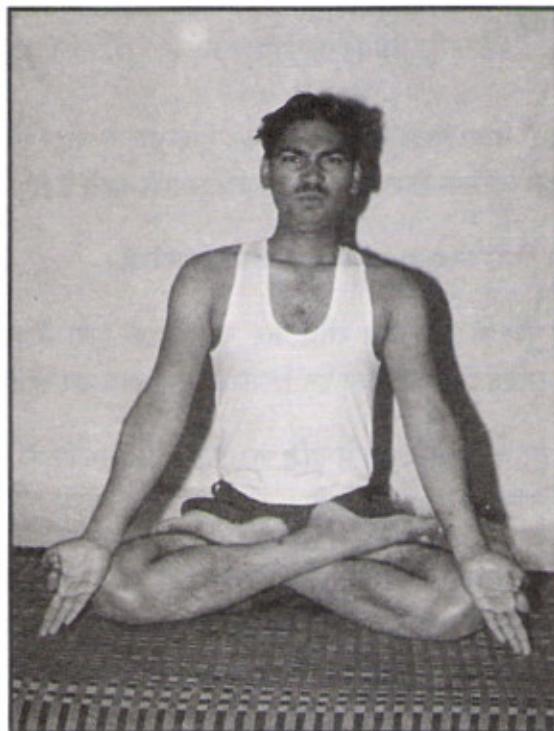
- त्राटक क्रिया का अभ्यास करते समय आसन एकदम स्थिर हो तथा शरीर में किसी भी प्रकार की हलचल नहीं होनी चाहिए।
- त्राटक क्रिया के बाद नेत्र और मस्तिष्क में उष्णता बढ़ जाती है इसलिये इस क्रिया के बाद जलनेति करनी चाहिए।

#### त्राटक के अधिकारी-

- जिस साधक की पित्त प्रकृति हो, जिसके मस्तिष्क, नेत्र, नासिका या हृदय में दाह रहता है वह केवल अन्तः त्राटक का अधिकारी है।
- जिनकी दृष्टि दूर की वस्तुओं के लिये कमजोर हो, जिनकी वातप्रधान प्रकृति हो या जिन्हें शुक्र की निर्बलता हो, वे बाह्य त्राटक के अधिकारी हैं।
- जिनकी दृष्टि दोष-रहित हो, त्रिधातु सम हो, कफ-प्रधान प्रकृति हो, नेत्रों की ज्योति पूर्ण हो, वे मध्य त्राटक के

अधिकारी हैं ।

**विशेष-** अम्लपित्त, जीर्णज्वर, विषमज्वर, मज्जातन्तु-विकृति, पित्ताशय-विकृति इत्यादि किसी रोग से पीड़ित अथवा तम्बाकू, गाँजा आदि के व्यसनी को त्राटक-क्रिया का अभ्यास नहीं करना चाहिए ।



### कपालभाति

**कपालभाति-** वृहत् मस्तिष्क के सामने के हिस्से को कपाल कहते हैं । भाति यानी धौंकनी, अर्थात् मस्तिष्क के समस्त विकारों को दूर कर प्राण शक्ति द्वारा कपाल का शोधन जिस क्रिया से होता है, उसे कपालभाति कहते हैं ।

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीतक्रमेण विशेषतः ।  
कपालभातिस्त्रिद्वाकुर्यात् कफदोषं निवारयेत् ॥

वातक्रम (कपालभाति), व्युत्क्रम (कपालभाति) और शीतक्रम (कपालभाति) के भेद से कपाल भाति तीन प्रकार की होती है । इसकी साधना करने से कफ से उत्पन्न विकारों का निवारण होता है ।

1. **वातक्रम-कपालभाति** - इड़ा नाड़ी (बायीं नासिका) मे वायु भर कर पिंगलानाड़ी (दाहिनी नासिका) से बाहर निकाल दें । इड़ा नाड़ी बायीं नासिका में और पिंगला दायीं नासिका में होती है । इड़ा नाड़ी तमोगुण-प्रधान तथा पिंगला

रजोगुण-प्रधान होती है तथा पिंगला नाड़ी से वायु खींच कर इड़ा नाड़ी से निकालने की अनुलोम-विलोम क्रिया को वातक्रम कपालभाति कहते हैं।

**लाभ-**इस से-

1. कफ-दोष का निवारण होता है।
2. मन एकाग्र होता है।
2. व्युत्क्रम-कपालभाति -दोनों नासा छिद्रों से जल खींच कर मुख-द्वार से बाहर निकालने और मुख से जल खींच कर इस नाड़ी से निकालने की इस व्युत्क्रम-क्रिया को व्युत्क्रम-कपालभाति कहते हैं।

**लाभ:** यह कंठ, मुख और नासा छिद्रों को शुद्ध करने में अत्यन्त उपयोगी है।

3. शीतक्रम-कपालभाति - मुख के द्वारा जल खींच कर नासिका के द्वारा निकालने की क्रिया को शीतक्रम-कपालभाति कहते हैं। धीरे-धीरे उचित निर्देशन में ही इन क्रियाओं का अभ्यास करना हितकर है।

**लाभ:** यह चेहरे पर झुर्री आदि दूर करके सुन्दरता में वृद्धि करती है। कपालभाति की उपर्युक्त क्रियाओं के अतिरिक्त सबसे सरल तथा उपयोगी क्रिया निम्नलिखित प्रकार से है-

किसी भी आसन (पद्मासन, सुखासन या वज्रासन) में बैठकर हाथ घुटने पर रखकर नासिका से श्वास खींचकर झटके के साथ कई हिस्सों में विभाजित करते हुए छोड़ते हैं। अन्तिम बार दीर्घ प्रश्वास से फेफड़े की पूरी वायु बाहर निकाल देते हैं फिर तीनों बन्ध लगाकर (सबसे पहले जालन्धर बन्ध, उसके बाद मूलबन्ध, उसके पश्चात् उडिड्यानबन्ध लगाकर) तथा छोड़ने के लिये सबसे पहले उडिड्यानबन्ध फिर मूलबन्ध और अन्त में जालन्धर बन्ध छोड़ना चाहिए। बहिष्कुम्भक भी करना चाहिए। इस क्रिया का अभ्यास प्राणायाम के बाद खाली पेट ही करना चाहिए।

**लाभ - यह-**

1. श्वास-रोग, तपेदिक, दमा आदि में लाभकारी है।
2. सिर-दर्द तथा मस्तिष्क सम्बन्धी रोग दूर करता है।
3. फेफड़े की शुद्धि करके रक्त-शोधन, मस्तिष्क के विकास और मन की चंचलता आदि दूर करता है।

षट्कर्म योगाभ्यास के क्षेत्र में निःसन्देह अत्यन्त आवश्यक अंग है। इनके सम्यक् और विधि पूर्वक अभ्यास से आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के साधन से कायाशोधन होने पर सुषुम्णा में अपान-प्राण के प्रवेश से षट्क्रक्त प्राणित होते हैं, मूलाधार में सोयी कुण्डलिनी जाग जाती है और षट्क्रक्तों को मुद्राबन्ध के अभ्यास के सहरे भैदन करती हुई शरीर में नव प्राण-शक्ति भरती हुई सहस्रार में परब्रह्म अलखनिरंजन शिव से सामरस्य स्थापित कर तत् स्वरूप हो जाती है।

शरीर में त्रिधातु सम होने पर षट्कर्म नहीं करना चाहिए। शरीर-शुद्धि के लिये अथवा इन क्रियाओं पर

अधिकार रखने के लिये प्रारम्भ में कुछ समय तक अभ्यास किया जा सकता है जिससे भविष्य में देशकाल-परिवर्तन, प्रमाद या आहार-विहार से वातादि धातुओं के विकृत हो जाने पर इन क्रियाओं द्वारा इनका शमन किया जा सकता है। परन्तु आवश्यकता न होने पर नित्य करते रहने से समय का अपव्यय, शारीरिक निर्बलता और मानसिक प्रगति में शिथिलता आ जाती है। इसलिए षट्कर्म आवश्यकतानुसार तथा आवश्यक सावधानी के साथ ही करना चाहिए। अतः इसे किसी जानकार व्यक्ति या गुरु के निर्देशन में करना ही निरापद एवं उचित है।

## आसन

हठयोग-साधना का द्वितीय साधन “आसन” है। मन और शरीर को पुष्ट, दृढ़ एवं आरोग्य प्रदान करने की शरीर की विशेष स्थिति आसन कहलाती है। सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति में गोरक्षनाथ जी ने “आसन” को स्वरूप-चेतन आत्मा-में स्थित हो जाना कहा है। यथा “आसनमिति स्वस्वरूपे समासन्नता ।” योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ जी ने संतोष को ही “आसन” कहा है अर्थात् जो स्थिति साधना के लिये साधक को सन्तुष्ट करती हो वही आसन है। मछीन्द्रगोरख बोध’में मत्स्येन्द्रनाथ जी कहते हैं-

अवधू सन्तोष सो आसन विचार सो ग्यान ।

महर्षि पतंजलि ने योग-सूत्र में आसन की सरल व्याख्या इस प्रकार की है-

“स्थिरसुखमासनम्”

जो स्थिर सुखदायी हो शरीर की वह स्थिति आसन है। आसनो के अभ्यास से शरीर की स्थिरता अथवा सुगमता सुदृढ़ता ही नहीं मानसिक स्थिरता भी प्राप्त होती है। हठयोग के आचार्य महर्षि घेरण्ड का कथन है- “आसनेन भवेद् दृढ़म्”

अर्थात् आसनों से शरीर में सुदृढ़ता आती है। शरीर के अंग-प्रत्यंग पुष्ट और स्वस्थ होते हैं। गोरखवाणी में गोरक्षनाथ जी कहते हैं- जीविताकैतलि मूवा बिछावन यूं बोल्या गोरष वाणी ।

जीविता का तात्पर्य आत्मा से है और “मूवता” का अभिप्राय जड़ शरीर से है। आसन के द्वारा शरीर वश में रहता है। हठयोग-प्रदीपिका में “आसन” के सम्बन्ध में कहा है-

कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाधवम् । - (१/१९)

आसनों के अभ्यास से शरीर में स्थैर्य, आरोग्य और अंगस्फूर्ति की प्राप्ति होती है। गोरखवाणी में आसन के सम्बन्ध में कहा है-

निश्चय आसन पवनां ध्यान अगनी कंद न जाई ।

(आसन, प्राण और ध्यान के स्थिर होने पर अथवा सिद्ध होने पर शरीर की जीवनी-शक्ति, अग्नि और वीर्य नष्ट नहीं होते।) तथा “आसन दृढ़ करि धरौ धियानं”

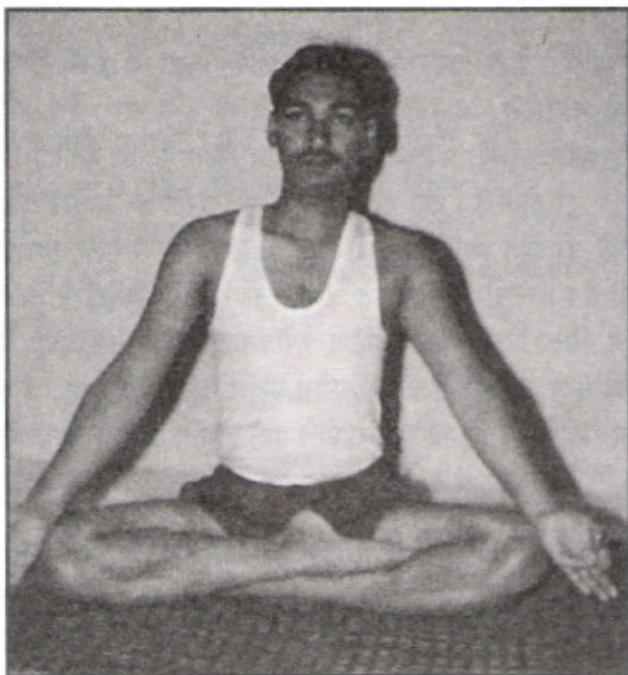
अस्तु आसन की दृढ़ता का परमफल है ध्यान की साधना में सिद्धि प्राप्त करना।

आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है तथा शरीर के अंग-प्रत्यंग के क्रियाशील होने से आरोग्यता बढ़ती है। आसनों से मांसपेशियों के तन्तु और सेल सक्रिय होते हैं जिनसे उनकी ग्रहणशीलता में वृद्धि होती है तथा जठराग्नि प्रदीप्त होने से पाचन किया भी तेज होती है जिससे शरीर की अनावश्यक चर्बी कम होती है तथा मोटापा दूर होता है। रीढ़ की हड्डी जो पूरे शरीर का आधार तथा जिससे होकर सुषुम्णा का प्रवाह है वह योगासन से सीधे प्रभावित होती है। शरीर की हड्डियों को लचीला तथा स्वस्थ करने में आसनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। आसनों के नियमित अभ्यास से रीढ़ की हड्डी से होने वाले दुष्प्रभाव जैसे कूबड़ निकलना, लकवा ग्रस्त होना, स्लिप डिस्क, आर्थराइटिस, स्पोंडलाइटिस, कम्पन आदि रोगों से बचा जा सकता है। आसनों से शरीर में स्थित विभिन्न अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ- जैस पीयूष-ग्रन्थि, पीनियल-ग्रन्थि, मुल्लिका-ग्रन्थि, थाइमस और यौन-ग्रन्थि आदि सक्रिय होती हैं जो इन ग्रन्थियों से होने वाले हार्मोन आदि के स्राव को नियंत्रित रखती हैं जिनका प्रभाव शारीरिक व मानसिक स्थिति पर पड़ता है।

योग के आदि प्रवर्तक आदिनाथ भगवान् शिव ने जीव-जगत् की चौरासी लाख योनियों के अनुसार आसनों की संख्या भी चौरासी लाख बतायी है। जीव अपनी जीवन-यात्रा में इन चौरासी लाख योनियों में भटकता हुआ अन्त में ‘‘मोक्ष’’ को प्राप्त कर सकता है। चौरासी लाख संख्या में अधिक होने के कारण वर्तमान में केवल चौरासी आसन ही व्यवहार में उपयोगी माने गये हैं। इन चौरासी प्रमुख आसनों में भी बत्तीस प्रमुख आसन घेरण्ड-संहिता के अनुसार इस प्रकार है-

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं बज्रं च स्वास्तिकम् ।  
 सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ॥  
 मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च ।  
 गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं संकटं तथा  
 मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम् ।  
 उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डूकं गरुणं वृषम् ॥  
 शालभं मकरं चोष्ट्रं भुजंगं योगमासनम् ।  
 द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्ये सिद्धिं प्रदानि च ॥

अर्थात् सिद्ध, पद्म, भद्र, मुक्त, बज्र, स्वास्तिक, सिंह, गोमुख, वीर, धनुष, मृत, गुप्त, मत्स्य, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, पश्चिमोत्तान, उत्कट, संकट, मयूर, कुक्कुट, कूर्म, उत्तानकूर्म, उत्तानमण्डूक, वृक्ष, मण्डूक, गरुड, वृषभ, शालभ, मकर, उष्ट्र, भुजंग, और योगासन यह बत्तीस आसन मृत्यु-लोक में सिद्धि प्रदान करने वाले हैं।



सिद्धासन

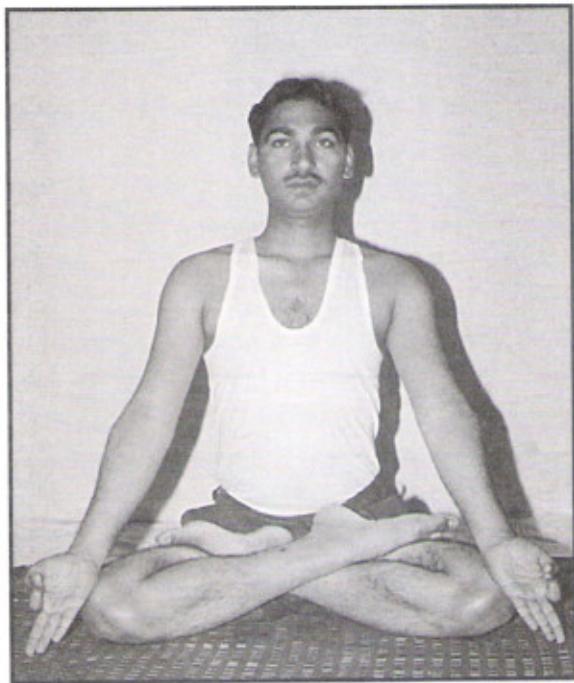
हठयोग-साधना के इन प्रमुख आसनों का विवरण इस प्रकार है-

### 1. सिद्धासन

**विधि-** सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठते हैं। बायें पैर को मोड़कर ऐंडी को पायु (गुदा) और उपस्थि के मध्य स्थित सीवनी नाड़ी पर इस प्रकार रखना चाहिये कि उसका तलवा दाहिने जाँघ की पिंडली के बीच स्थित हो जाय। इसी प्रकार दाहिनी ऐंडी को उपस्थि (मूत्रेन्द्रिय) के ऊपर रखकर उसके अंगूठे और तर्जनी को बांधी जाँघ और पिंडली के बीच स्थित करना चाहिए। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर ज्ञानमुद्रा की स्थिति में रखें तथा ठोड़ी को कंठमूल में लगाकर हृदय के ऊपर स्थिर करें, मेरुदण्ड और गर्दन को सीधी और स्थिर रखें, दृष्टि भ्रूमध्य पर रखें।

#### लाभ -

1. सिद्धासन के अभ्यास से सीवनी नाड़ी सीधे प्रभावित होती है जो मन की काम-वासना शान्त करती है जिससे ब्रह्मचर्य बना रहता है।
2. यह प्राण और मन पर संयम बनाये रखता है तथा
3. स्नायु-संस्थान को शान्त, स्थिर और सशक्त बनाता है।



पद्मासन

## सावधानी -

1. साइटिका और रीढ़ के नीचे के भाग के विकार से पीड़ित व्यक्ति को यह आसन नहीं करना चाहिए।
2. आध्यात्मिक प्रयोजन के लिये इस आसन को 3-4 घन्टे तक किया जा सकता है परन्तु बच्चे तथा विवाहित युवा इसका अभ्यास 30 मिनट से अधिक कदापि न करें।
2. पद्मासन - कमलपुष्प के नाम पर इस आसन का नाम पड़ा है। चूंकि इस आसन में शरीर की आकृति "कमल" की तरह हो जाती है इसीलिये इसे पद्मासन कहते हैं।

**विधि:** - सामान्य स्थिति में दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठें। बाये पैर को मोड़कर दाहिनी जांघ पर तथा दाहिने पैर को मोड़कर बाँयी जांघ पर रखें। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर ज्ञान-मुद्रा की स्थिति में रखें। मेरुदण्ड और गर्दन सीधी ओर रखकर दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर केन्द्रित करना चाहिये। श्वास सहज रखें। पद्मासन के अनेक भेद हैं। जैसे- अर्द्धपद्मासन, उत्थितपद्मासन, गुप्तपद्मासन, बद्धपद्मासन आदि।

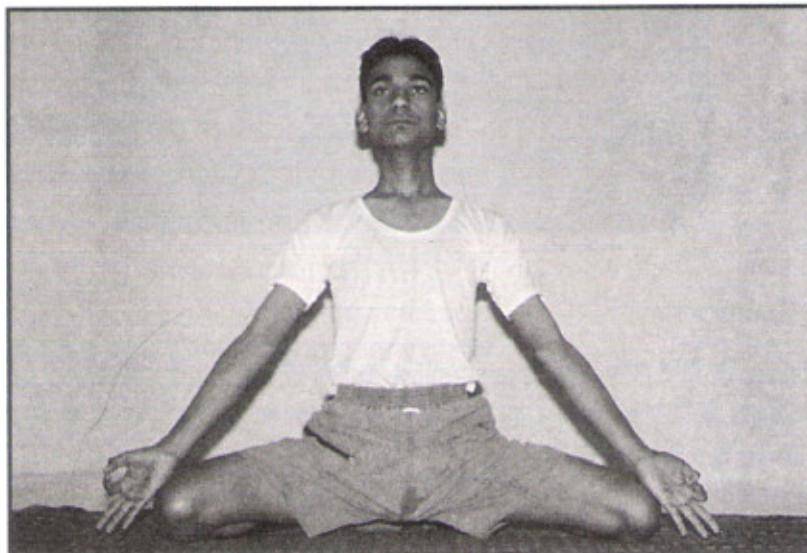
## लाभ-

1. इस आसन के अभ्यास से पैर की नाड़ियाँ तथा नसें शुद्ध और पुष्ट होती हैं जो फाइलेरिया, और गठिया में लाभ पहुँचाती हैं।

2. पद्मासन में बैठकर पेट की पसलियों को ऊपर खींचने तथा फिर यथा स्थित रखने से पाचन शक्ति बढ़ती है, पैर के भी दोष और रोग दूर होते हैं, भूख बढ़ती है।
3. पद्मासन में पायु (गुदा) और उपस्थ के आस-पास की नाड़ियों और नसों को ऊपर खींचने से वीर्य विकार नष्ट होते हैं। आमवात रोग नष्ट होता है।
4. मेरुदण्ड सीधा रखने से सुषुम्णा नाड़ी गतिशील होती है।
5. पद्मासन से शरीर की स्थिरता से मन स्थिर और एकाग्र होता है।

#### सावधानी-

1. साइटिका, मेरुदण्ड के निचले हिस्से में दर्द की स्थिति में पद्मासन नहीं लगाना चाहिए।
2. पद्मासन को प्रारम्भ में अधिक देर तक नहीं करना चाहिये। धीरे-धीरे इस का अभ्यास बढ़ाना चाहिये।

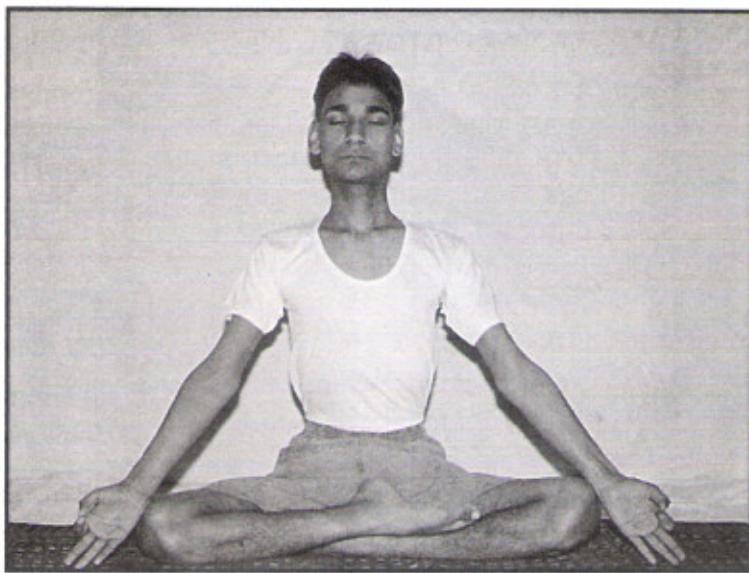


**भद्रासन**

3. भद्रासन - वज्रासन में बैठकर दोनों घुटनों की दूरी यथासम्भव बढ़ायें, पैर की अँगुलियाँ जमीन छूती रहें, पंजो को इतने अन्तर पर रखना चाहिए कि उनके बीच में नितम्ब रखकर बैठा जा सके, दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखना चाहिये, दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर होनी चाहिये।

#### लाभ-

1. इस आसन के अभ्यास से साधक की आध्यात्मिक शक्ति और साधना की सात्त्विक प्रवृत्ति बढ़ती है और मूलाधार-चक्र क्रियाशील होता है।
2. पैरों की नसें मुलायम होती हैं तथा वातब्याधि और मलावरोध का नाश होता है।



मुक्तासन

4. मुक्तासन - सिद्धासन का ही सामान्य रूप मुक्तासन है। दोनों पैरों को सामने फैलाकर सबसे पहले दायें पैर को घुटने से मोड़कर बायें पैर पर रखें। दोनों पैरों के पंजो को एक-दूसरे की जाँघ और पिण्डली के बीच इस प्रकार लगायें कि पैर के पंजे दिखाई न दें। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर ज्ञान-मुद्रा की स्थिति में रखें।

#### लाभ -

1. इससे सीधनी नाड़ी के सीधे प्रभावित होने से ब्रह्मचर्य की शक्ति बढ़ती है।
2. यह स्नायु-संस्थान को शान्त, स्थिर और सशक्त बनाता है।

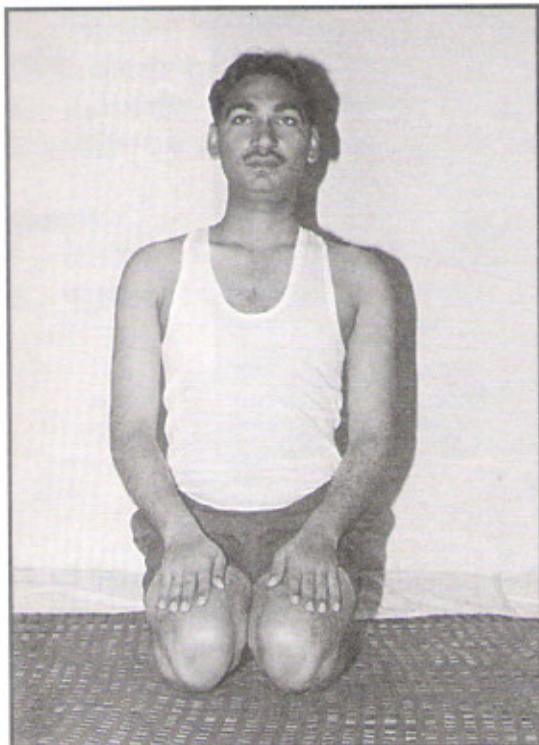
5. वज्रासन - इस आसन का सीधा सम्बन्ध वज्र नाम की नाड़ी से होने के कारण इसे वज्रासन कहते हैं। वज्र नाड़ी का सीधा सम्बन्ध पाचन-संस्थान से होता है जिससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

**विधि** - दोनों पैरों को मोड़कर घुटनों के बल इस प्रकार बैठें कि दोनों पैरों के अंगुष्ठ मिले हों, एँडी अलग-अलग हो तथा दोनों घुटने परस्पर सटे हों। नितम्ब दोनों एँडियों के बीच होना चाहिये। मेरुदण्ड एवं गर्दन सीधी रखकर दोनों हाथों को घुटने पर रखें। यह एक मात्र आसन है जिसे भोजन के बाद करने से लाभ मिलता है।

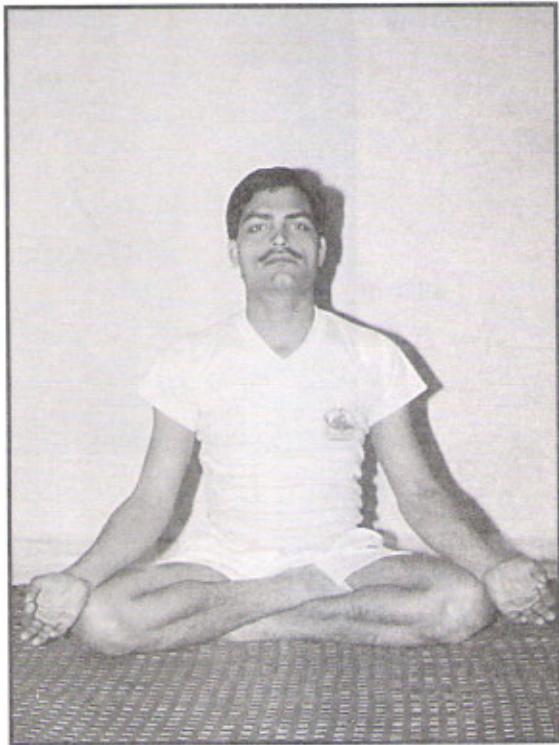
#### लाभ-

1. वज्रासन के अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होती है जिससे पाचन शक्ति बढ़ती है।
2. कमरदर्द, कटिस्तम्भ और पीठ की वेदना में यह आसन बड़ा उपयोगी है।
3. घुटनों का दर्द साइटिका और रीढ़ के निचले भाग के विकारों में भी यह लाभ पहुँचाता है।

4. हर्निया से कष्ट में आराम पहुंचाता है।



वज्रासन



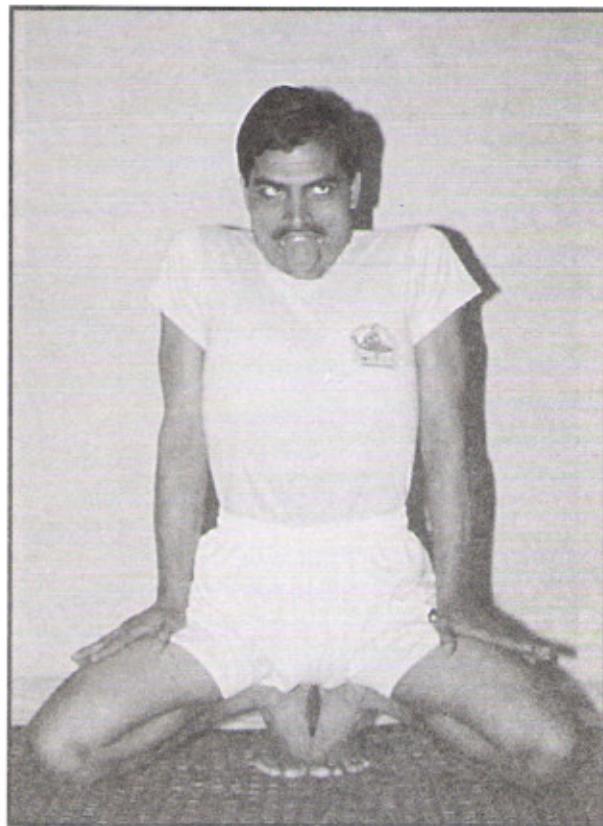
स्वास्तिकासन

5. स्वास्तिकासन - सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने की तरफ फैलाकर बैठें। इसके बाद बायें पैर को मोड़कर पंजे को दायीं जाँच की मांसपेशियों के पास रखें। इसी तरह दायें पैर को मोड़कर उसकी अँगुलियों को बायीं जाँच और पिंडलियों की मांसपेशियों के बीच रखें। अर्थात् दोनों पैरों की अँगुलियाँ दोनों जाँधों और पिंडलियों के बीच में रहनी चाहिए। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर ज्ञान-मुद्रा की स्थिति में रखें और श्वास सहज रखें।

लाभ -

1. इस आसन से रीढ़ की स्थिरता बनी रहती है जो ध्यान के लिये उपयोगी है।
2. यह सुषुम्णा नाड़ी में प्राण का उचित प्रवाह करने में सहायक है जिससे मन एकाग्र होता है।

सावधानी - साइटिका तथा रीढ़ की हड्डी के निचले भाग में फोड़ा आदि विकार होने पर यह आसन वर्जित है।



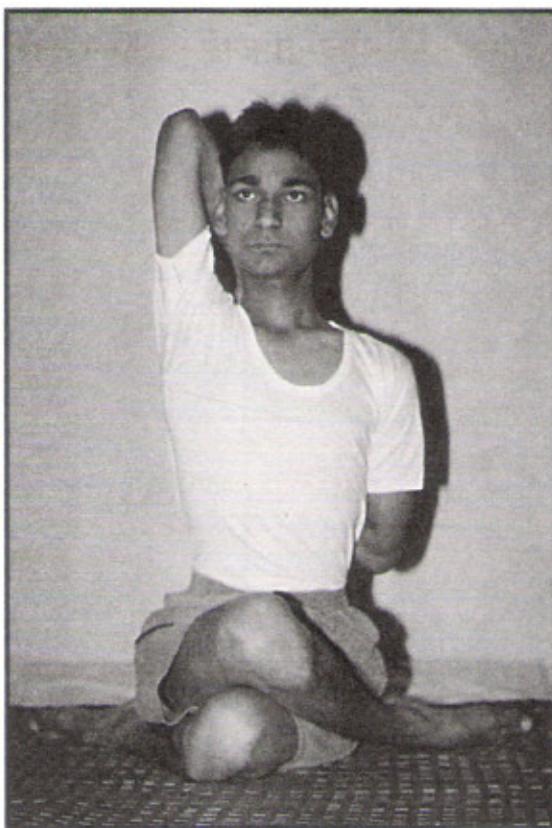
सिंहासन

7. सिंहासन – वज्रासन की स्थिति में बैठकर दोनों घुटनों को फैलाकर दोनों भुजाओं को दोनों घुटनों के बीच इस प्रकार रखें कि हाथों की अँगुलियां अन्दर की ओर रहें फिर सिर ऊपर करके जीभ को जितना सम्भव हो बाहर निकालें और दृष्टि भ्रूमध्य पर हो। श्वास नासिका से लें तथा गले से सिंह जैसी आवाज निकालते हुये मुङ्ह से श्वास बाहर निकालते रहें।

#### लाभ-

1. यह गले के प्रायः सभी रोगों में लाभदायक है और आखों की ज्योति बढ़ाने में सहायक है।
2. यह मुङ्ह की झुर्रियों को दूर कर चेहरे के सौन्दर्य को बढ़ाता है।
3. यह हकलाकर बोलने वालों के लिये उपयोगी आसन है।

**सावधानी** – सिंहासन का अभ्यास सूर्योदय के समय सूर्य की ओर मुङ्ह करके किया जाय तो उत्तम रहता है।



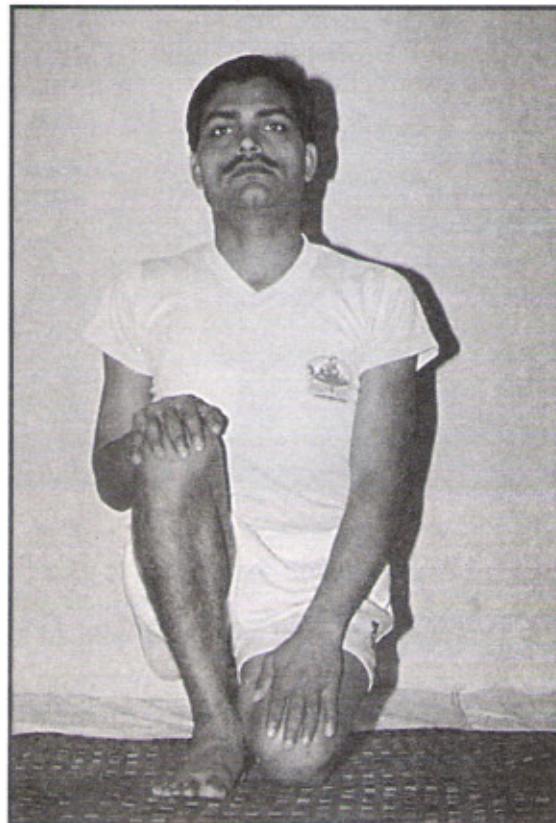
गोमुखासन

8. गोमुखासन - इस आसन में शरीर की आकृति गौ के मुख के सदृश बनने के कारण इसे गोमुखासन कहते हैं।

**विधि** - सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने फैलाकर सामान्य स्थिति में बैठें। इसके बाद बायें पैर को घुटनों से मोड़कर दायें पैर के नीचे ले जाकर बायें पैर की ऐँड़ी को दायें नितम्ब के नीचे रखें तथा दायें पैर को भी घुटने से मोड़कर बायें पैर के ऊपर ले जाकर दायीं ऐँड़ी को बायें नितम्ब के नीचे रखने का प्रयास करें। इससे दायें पैर का घुटना बायें पैर के घुटने पर आ जायेगा और दोनों ऐँड़ियाँ परस्पर विपरीत दिशा में नितम्ब के नीचे रहेंगी। मेरुदण्ड को सीधा रखकर दायें हाथ की कुहनी को दायें कान से सटाते हुये ऊपर इस तरह उठायें कि हथेली गर्दन के नीचे पीठ पर मेरुदण्ड पर आ जाय तथा बायें हाथ की कुहनी को नीचे रखते हुये हथेली गर्दन के नीचे पीठ पर इस प्रकार ले जायें कि दोनों हाथों की अँगुलियाँ आपस में बँध जायें सिर, गर्दन और मेरुदण्ड सीधी रखें तथा आँखें बन्द करके श्वास भी सामान्य रखते हुए मन को आज्ञा-चक्र में केन्द्रित करें।

**लाभ - यह-**

1. वात-रोगों को दूर करने में उपयोगी आसन है।
2. हाइड्रोशील का बढ़ना रोकता है।
3. मधुमेह से छुटकारा दिलाने में सहायक है।
4. किडनी के दोषों को दूर करके कार्यक्षमता बढ़ाने में सहायक है।



**वीरासन**

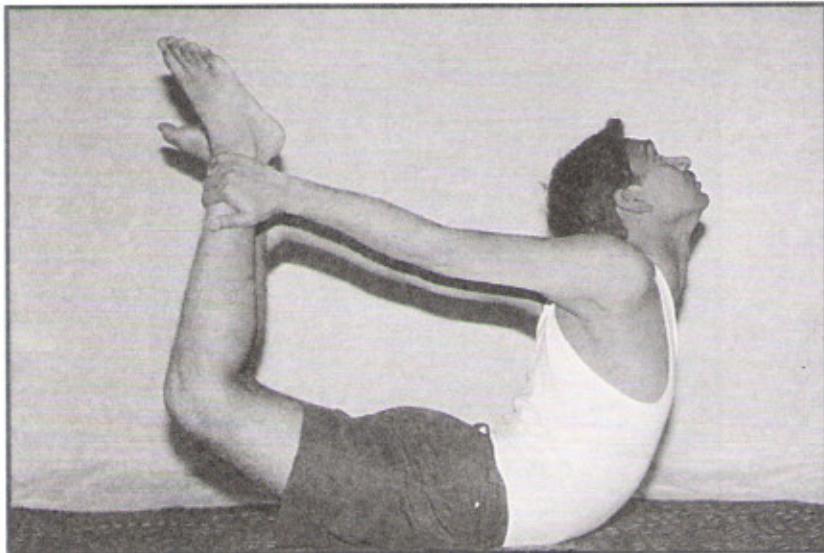
**वीरासन -**

**विधि -** वज्रासन में बैठकर दाहिने पंजे को बायें घुटने के पास रखकर दायें हाथ की कुहनी दायें घुटने पर, हथेली को ठोड़ी पर रखें तथा बाँया हाथ बाँयिं घुटने पर रखें। श्वास सामान्य रहे। इस स्थिति को बदल कर भी करें।

**लाभ -**

1. गहन चिन्तन-मनन के लिये यह उत्तम आसन है।

2. जिनका एक पैर पोलियो अथवा गठिया से पीड़ित हो उस पैर को मोड़कर अभ्यास करने से मन एकाग्र करने में सफलता मिलेगी ।
3. यह आसन मन में निर्भीकता का भाव पैदा करता है तथा चिन्ता-निराशा को दूर करता है ।



**धनुरासन**

10. धनुरासन - इस आसन से शरीर की आकृति धनुष की तरह होने के करण इसे धनुरासन कहते हैं ।

**विधि :-** - सबसे पहले पेट के बल लेट कर दोनों हाथों को पीठ की ओर ले जाकर दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर पैरों के टखनों को दोनों हाथों से पकड़ें श्वास लेते हुये सिर, छाती और जाँघ को पृथ्वी से ऊपर जितना सम्भव हो उठायें तथा तनाव दें । पूरा शरीर केवल पेट के सहारे रखें । पश्चात् श्वास छोड़ते हुये पूर्व स्थिति में आवें ।

#### लाभ -

1. पेट सम्बन्धित सभी प्रकार के विकारों-कब्ज, गैस, वायु की रुकावट को दूर करने में यह सहायक है ।
2. इससे शरीर की स्थूलता में कमी आ जाती है और मोटापा नष्ट होकर शरीर सुडौल बनाने में सहायता मिलती है ।
3. यह शरीर की लम्बाई बढ़ाने में भी सहायक है ।

**विशेष -** - धनुरासन के अभ्यास के बाद शरीर में एक विशेष प्रकार की थकावट का अनुभव होता है इसलिये इस के बाद शवासन अवश्य करें ।



मृतासन

**11. मृतासन (शवासन) -** इस आसन में शरीर के शव के समान निश्चेष्ट होने के कारण इसे शवासन या मृतासन कहते हैं।

**विधि -** पीठ के बल चित्त लेटकर शरीर के अंग-प्रत्यंग को ढीला रखें। दोनों हाथ बगल में ऐसे रखें कि हथेलियाँ ऊपर की ओर रहें तथा दोनों पैरों के बीच लगभग एक फुट की दूरी रहे। श्वास सामान्य रूप से और धीरे-धीरे लें। मन शान्त रहे, नेत्र बन्द रहे।

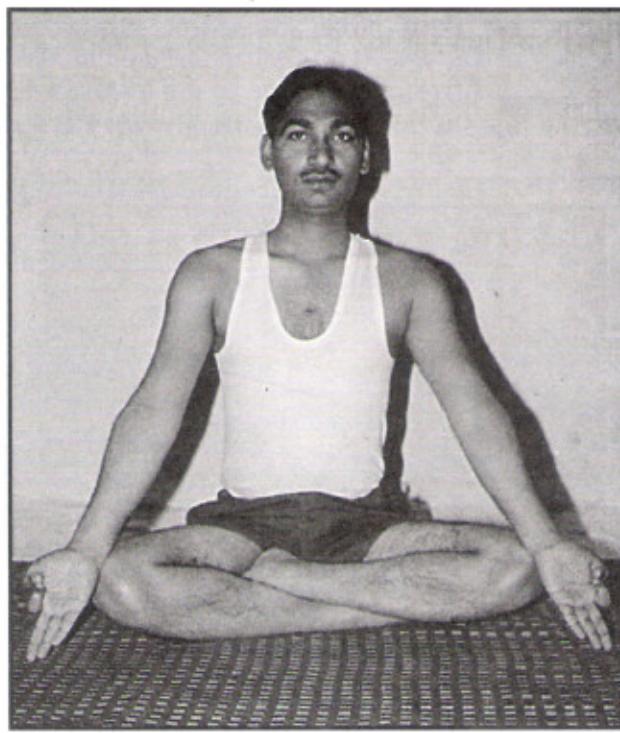
**लाभ -**

1. शवासन के अभ्यास से शरीर की थकावट दूर हो जाती है, मन की चिन्ता समाप्त होती है।
2. यह उच्च रक्त-चाप में उपयोगी है।
3. यह अनिद्रा को दूर करता है।

**12. गुप्तासन -** सामान्य स्थिति में दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठ जायें। बायें पैर के पंजे को उपस्थ (अण्डकोश) के नीचे इस प्रकार रखें कि एँड़ी जमीन पर रहे। इसके बाद बायें पैर के तलवे पर दायें पैर की एँड़ी रखें। इस के उपरान्त दोनों घुटनों पर शरीर का भार लेते हुये ऊपर की एँड़ी पर गुदाद्वार को रखें। दोनों हाथ ज्ञानमुद्रा की स्थिति में दोनों घुटनों पर रहें।

**लाभ -**

1. इस आसन के अभ्यास से पुरुषों में वीर्य-दोष ठीक होते हैं।



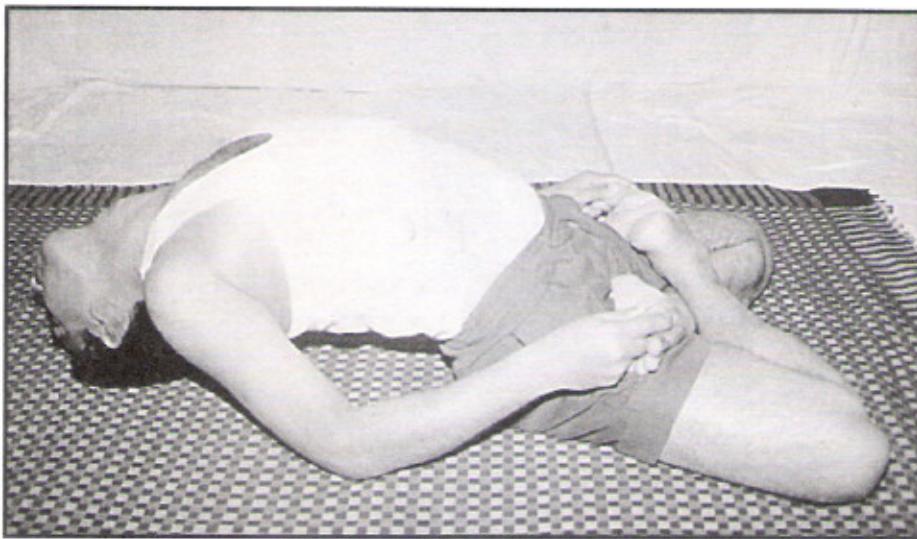
**गुप्तासन**

2. कब्ज, मन्दाग्नि अनेक उदर रोग प्रमेह, मधुमेह, स्वप्नदोष, धातुक्षय आदि ठीक होते हैं।
3. महिलाओं के गर्भाशय के रोगों तथा अन्य स्त्री रोगों में यह आसन उपयोगी है।

13. मत्स्यासन - पद्मासन में बैठकर दोनों हाथों को ऊपर उठायें दोनों हथेलियाँ खुली हों, श्वास लेते हुये पीछे की ओर तब तक झुकें जब तक सिर का ऊपरी हिस्सा जमीन पर न टिक जाय। इसमें गर्दन से लेकर कमर तक की रीढ़ की हड्डी धनुषाकार ऊपर रहनी चाहिये। जमीन से स्पर्श इस हिस्से का न हो। दोनों घुटनों को जमीन पर सटाकर दोनों हाथों से पैरों के अँगूठे को पकड़ें। श्वास सामान्य रहे।

#### लाभ -

1. इससे हाथ, पैर और कन्धों में शक्ति का संचार होता है।
2. यह शरीर की अनावश्यक चर्बी को हटाकर शरीर को सुडौल बनाता है।
3. इस आसन के अभ्यास से मन एवं चित्त एकाग्र होता है।
4. यह कमर दर्द, यकृत विकार में उपयोगी है।



### मत्स्यासन

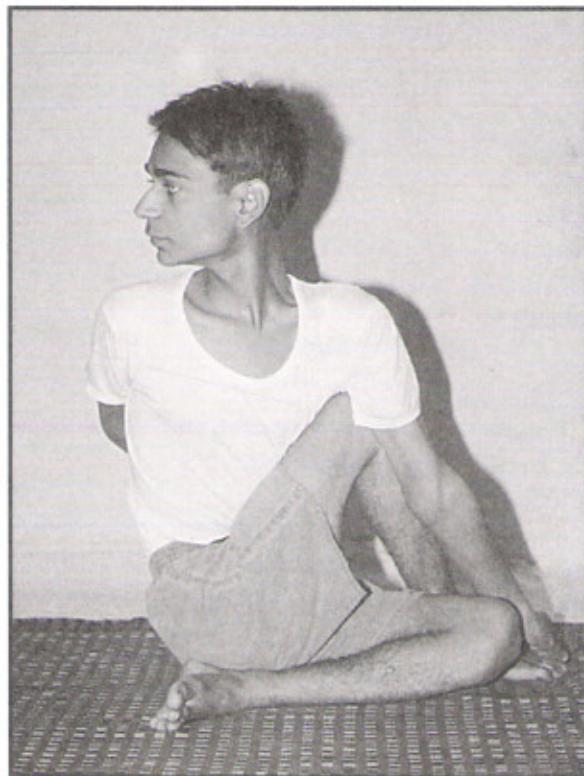
**विशेष -** मत्स्यासन का अभ्यास सर्वांगासन और हलासन के बाद करने पर विशेष लाभ होता है।

**14. मत्स्येन्द्रासन -** योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ जी ने इस आसन को आविष्कृत और सिद्ध किया था इसलिये उन्हीं के नाम पर इसका नाम मत्स्येन्द्रासन पड़ा है।

**विधि -** सामान्य स्थिति में बैठकर दाहिने पैर को बायीं जाँघ के मूल में रखें। बायें पैर को घुटना से मोड़कर दाहिने घुटने के दाँई ओर इस प्रकार खड़ा करें कि उसका तलवा जमीन को स्पर्श करे। अब दाहिने हाथ को बायें पैर के बायीं ओर ले जाकर बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें तथा हाथ को पीठ की ओर से कमर को लपेटते हुये बायीं जाँघ की ओर ले जायें। गर्दन को भी बायीं ओर जितना घुमा सकें, घुमायें। शरीर को मोड़ते समय श्वास बाहर निकालें (रेचक), आसन की पूर्णता की स्थिति में श्वास सामान्य रखें। इस आसन को पैर एवं हाथों की स्थिति बदलकर पुनः करें। दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर रखें।

**लाभ -**

1. मत्स्येन्द्रासन मांस पेशियों को लचीला बनाता है, मेरुदण्ड की संधियों, कशेरुकाओं का कड़ापन दूर कर नाड़ी तन्तुओं को तनाव रहित करता है।
2. इस से रक्त-संचार बढ़ता है और शरीर में स्फूर्ति बढ़ती है।
3. इससे अपच और मधुमेह का निवारण होता है।
4. इससे कमर और वातजन्य दर्द दूर होता है।
5. यह गर्दन, सिर और पीठ के दर्द का नाश करता है।



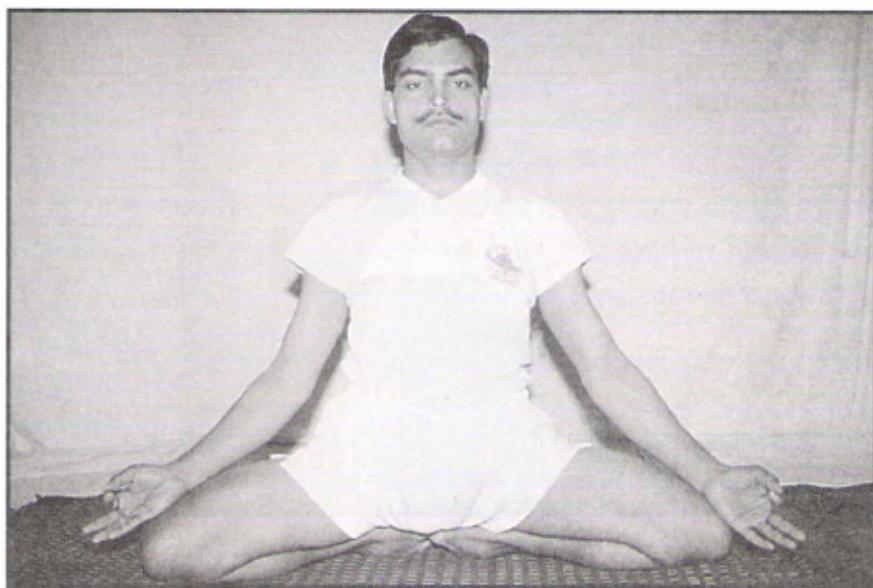
**मत्स्येन्द्रासन**

15 गोरक्षासन - गुरु गोरक्षनाथजी ने इस आसन को आविष्कृत और सिद्ध किया था इसलिये उन्हीं के नाम पर इसका नाम "गोरक्षासन" पड़ा है।

**विधि** - दोनों पैरों के तलुओं को सटाकर दोनों जाँधे दोनों तरफ फैलाकर बैठें। एँड़ियों को दोनों नितम्बों के नीचे पैरों के तलुओं को पीछे की ओर मोड़कर रखें। दोनों हाथों को ज्ञानमुद्रा की स्थिति में रखें। मेरुदण्ड सीधा तथा मुख सामने की ओर रहे। दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर हो।

**लाभ** -

1. यह ब्रह्मचर्य के लिये उत्तम आसन है।
2. यह जाँध, पिंडली, पैर, सीवनी और अण्डकोष से सम्बन्धित दोषों में उपयोगी है।
3. इस से मन स्थिर तथा एकाग्र और इन्द्रिय संयमित रहती है।



गोरक्षासन

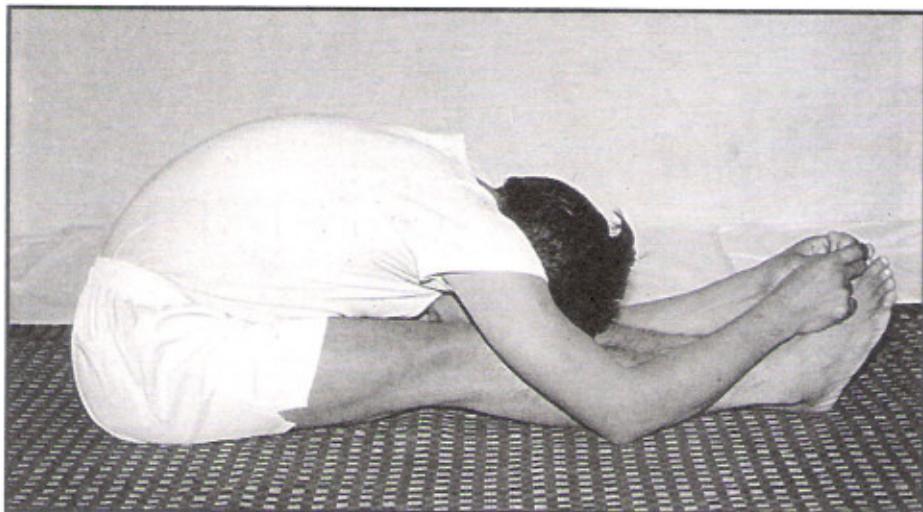
**16 पश्चिमोत्तानासन** – सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने फैलाकर इस प्रकार बैठें कि दोनों हाथ बगल में हों और दोनों पैरों के अंगुष्ठ आपस में मिले हों। इसके बाद दोनों हाथों को सिर के ऊपर ले जाकर श्वास छोड़ते हुये दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगुष्ठों को पकड़ें फिर सिर को घुटने पर लगाने का प्रयास करें तथा श्वास लेते हुये सामान्य स्थिति में आवें।

#### लाभ -

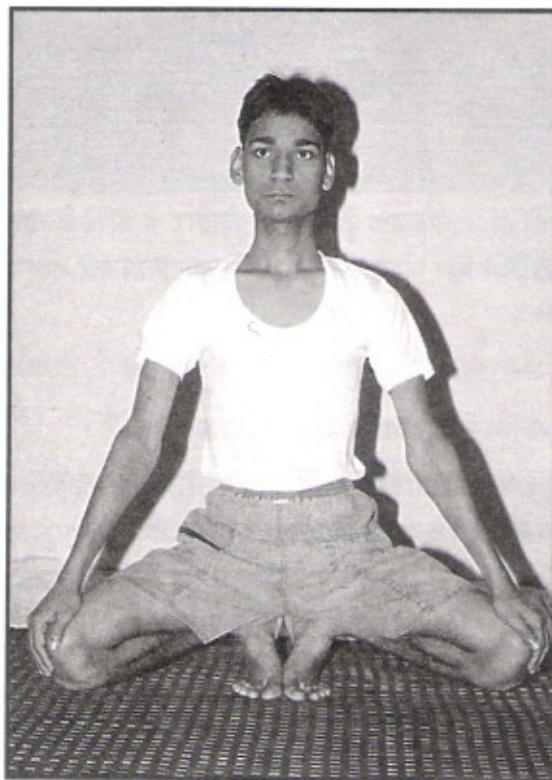
1. इस आसन के अभ्यास से आलस्य नष्ट होता है, शरीर में ताजगी आती है।
2. यह आसन पेट को हल्का कर और आरोग्य प्रदान कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है तथा पाचन शक्ति को बढ़ाता है। पेट की अनावश्यक चर्बी को कम करके मोटापा को दूर करता है।
3. यह मधुमेह में उपयोगी है।
4. यह मानसिक सन्तुलन स्थिर रखकर आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाता है।

#### सावधानी -

1. तीन मास के ऊपर की गर्भवती महिलाओं को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
2. जिन लोगों की आँत बढ़ गई हो, जिन के जिगर तिल्ली में विकार हो, जिन्हें पेटसे सम्बन्धित रोग अल्सर आदि हों



पश्चिमोत्तानासन



उत्कटासन

जिन की पीठ में दर्द हो, जिन्हें सायटिका हो तथा जिन की जोड़ो में दर्द हो उन्हें भी यह आसन नहीं करना चाहिए।

### 17. उत्कटासन: -

**विधि:** - जिस तरह कुर्सी पर बैठा जाता है, उसी तरह बिना कुर्सी के ही बैठने की शैली उत्कटासन कहलाती है। सर्वप्रथम सीधे खड़े हों, उसके बाद शरीर को धीरे-धीरे नीचे की ओर करते हुये जाँघों और घुटनों को समरेखा में लाने का अभ्यास करें। जब यह सम्भव हो जाये तब केवल दोनों पैरों के अंगूठों को जमीन पर टिका कर ऐंडी उठाकर दोनों पैरों के पंजों या अंगूठों पर ही शरीर का पूरा भार डालकर अभ्यास करें। इस आसन को बैठकर करने पर गुदास्थान को ऐंडियों के ऊपर रखा जाता है लेकिन ऐंडियां जमीन पर न रहें।

**लाभ -**

1. जिन लोगों के पैर कमजोर होते हैं, उन्हें इस आसन से लाभ होता है।
2. इस आसन के अभ्यास से मलाशय शुद्ध होता है, मल विसर्जन खुलकर होता है।

**सावधानी:** - महिलाओं को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

### 18. संकटासन -

**विधि -** संकटासन खड़े होकर तथा बैठकर दोनों स्थितियों में किया जा सकता है। इसे यदि खड़ा होकर करना हो तो खड़े होकर एक पैर से दूसरे पैर को लपेटकर दोनों घुटनों तथा पैरों के अंगूठों को जमीन पर रखकर अँगूठों पर ही शरीर का भार डाल कर तथा दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखा जाता है।

**लाभ -** यह आसन वायु के विकार को नष्ट करता है।

**सावधानी** महिलाओं को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

**✓ 19. मयूरासन -** मयूर पक्षी की शरीर-स्थिति की अनुकृति के कारण इस आसन विशेष का नाम मयूरासन है।

**विधि -** पेट के बल लेटकर दोनों हाथों की कोहनियों को नाभि के अगल-बगल रखकर पैरों को सीधा करके पेट को अन्दर की ओर सिकोड़ कर पूरे शरीर का सन्तुलन दोनों हाथों पर लेने का अभ्यास किया जाता है। इस में पैर को जमीन से ऊपर रख कर छाती और मुख को थोड़ा आगे झुकाना चाहिये। इस आसन की पूर्णता इसमें है कि सारे शरीर का भार दोनों हथेलियों पर ही रहे। यथाशक्ति पैरों को धरातल से अधिक से अधिक ऊपर उठाये रहने का अभ्यास करें। शरीर को ऊपर उठाते समय श्वास बाहर छोड़ना चाहिए और शरीर को नीचे की ओर करने पर श्वास लेना चाहिए।

१०७६ (१२)

जिन की पीठ में दर्द हो, जिन्हें सायटिका हो तथा जिन की जोड़ो में दर्द हो उन्हें भी यह आसन नहीं करना चाहिए।

#### 17. उत्कटासन: -

**विधि:** - जिस तरह कुर्सी पर बैठा जाता है, उसी तरह बिना कुर्सी के ही बैठने की शैली उत्कटासन कहलाती है। सर्वप्रथम सीधे खड़े हों, उसके बाद शरीर को धीरे-धीरे नीचे की ओर करते हुये जाँघों और घुटनों को समरेखा में लाने का अभ्यास करें। जब यह सम्भव हो जाये तब केवल दोनों पैरों के अंगूठों को जमीन पर टिका कर ऐंडी उठाकर दोनों पैरों के पंजों या अंगूठों पर ही शरीर का पूरा भार डालकर अभ्यास करें। इस आसन को बैठकर करने पर गुदास्थान को ऐंडियों के ऊपर रखा जाता है लेकिन ऐंडियां जमीन पर न रहें।

**लाभ -**

1. जिन लोगों के पैर कमजोर होते हैं, उन्हें इस आसन से लाभ होता है।
2. इस आसन के अभ्यास से मलाशय शुद्ध होता है, मल विसर्जन खुलकर होता है।

**सावधानी:** - महिलाओं को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

#### 18. संकटासन -

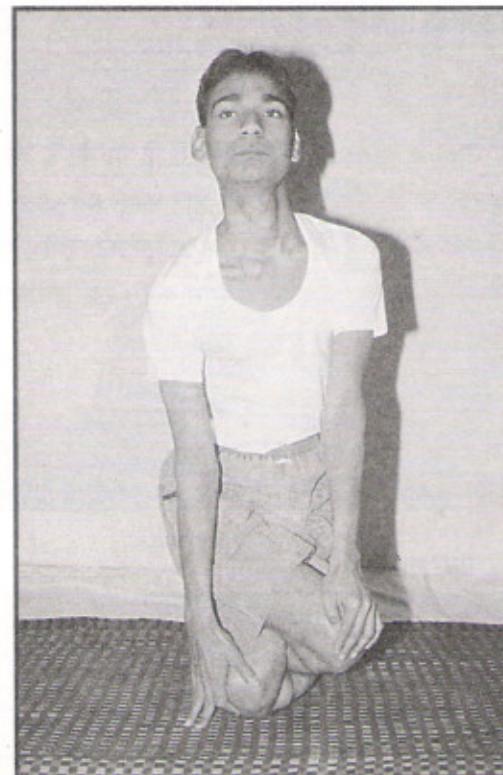
**विधि -** संकटासन खड़े होकर तथा बैठकर दोनों स्थितियों में किया जा सकता है। इसे यदि खड़ा होकर करना हो तो खड़े होकर एक पैर से दूसरे पैर को लपेटकर दोनों घुटनों तथा पैरों के अंगूठों को जमीन पर रखकर अंगूठों पर ही शरीर का भार डाल कर तथा दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखा जाता है।

**लाभ -** यह आसन वायु के विकार को नष्ट करता है।

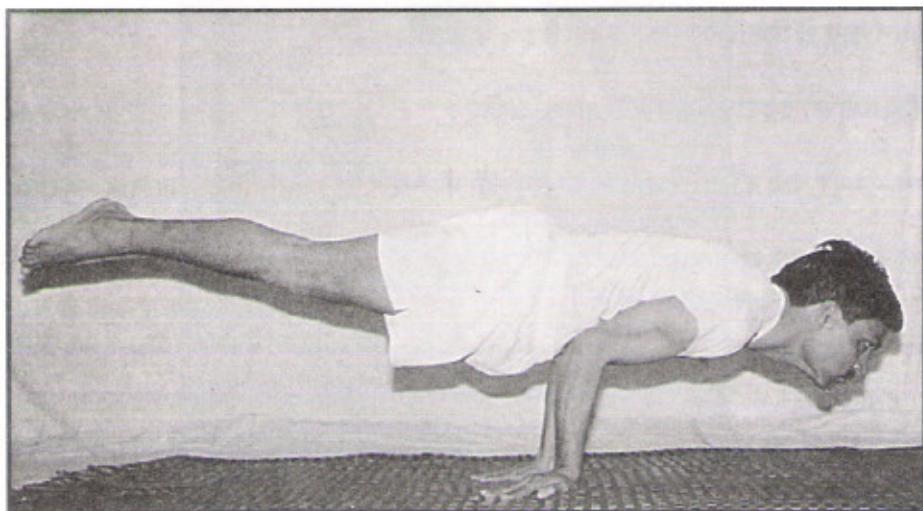
**सावधानी** महिलाओं को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

#### 19. मयूरासन - मयूर पक्षी की शरीर-स्थिति की अनुकृति के कारण इस आसन विशेष का नाम मयूरासन है।

**विधि -** पेट के बल लेटकर दोनों हाथों की कोहनियों को नाभि के अगल-बगल रखकर पैरों को सीधा करके पेट को अन्दर की ओर सिकोड़ कर पूरे शरीर का सन्तुलन दोनों हाथों पर लेने का अभ्यास किया जाता है। इस में पैर को जमीन से ऊपर रख कर छाती और मुख को थोड़ा आगे झुकाना चाहिये। इस आसन की पूर्णता इसमें है कि सारे शरीर का भार दोनों हथेलियों पर ही रहे। यथाशक्ति पैरों को धरातल से अधिक से अधिक ऊपर उठाये रहने का अभ्यास करें। शरीर को ऊपर उठाते समय श्वास बाहर छोड़ना चाहिए और शरीर को नीचे की ओर करने पर श्वास लेना चाहिए।



संकटासन



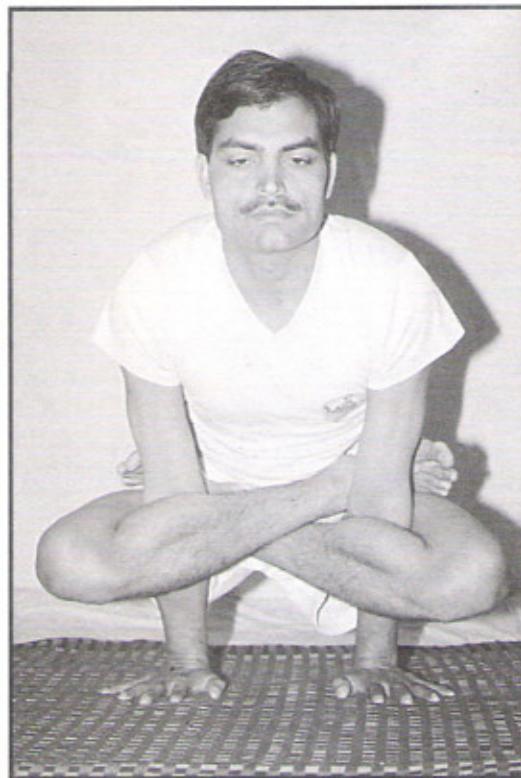
मयूरासन

**लाभ -**

1. यह आसन शरीर के विषैले द्रव्यों का शोधन कर उसे स्वास्थ्य और शक्ति प्रदान करता है।
2. यह उदर-विकार को नष्ट कर आँतों को दोषों से मुक्त रखता है।
3. यह मधुमेह में लाभ पहुंचाता है।

**सावधानी -**

1. इस आसन के बाद सिर के बल किये जाने वाले आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
2. उच्च रक्तचाप हार्निया या पेट में घाव होने पर भी इसका अभ्यास वर्जित है।



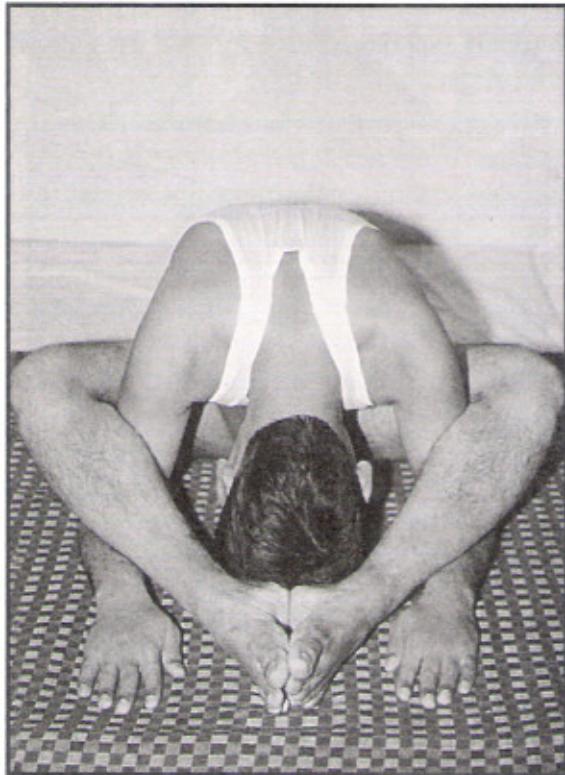
**कुक्कुटासन**

20. कुक्कुटासन - कुक्कुट का अर्थ है मुर्गा और मुर्गे की सी स्थिति बनाकर बैठने का नाम कुक्कुटासन है।

**विधि -** इसमें पद्मासन में बैठकर दाहिने-बायें हाथ को दाहिने-बायें पैर की जाँघ और पिंडली के बीच में कोहनी तक ले जाकर दोनों हाथों के पंजों को जमीन पर टिका कर हाथों के ऊपर शरीर को निर्भर कर उसे ऊपर उठाना चाहिए। इस आसन से शरीर की आकृति मुर्गे की तरह बनती है।

लाभ -

1. यह आसन हाथ, कंधों और सीने को पुष्ट करता है।
2. जिन लोगों के पेट में कीड़े हों उनके लिये यह आसन बड़ा लाभकारी है।
3. इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है और नाड़ी की शुद्धि होती है।



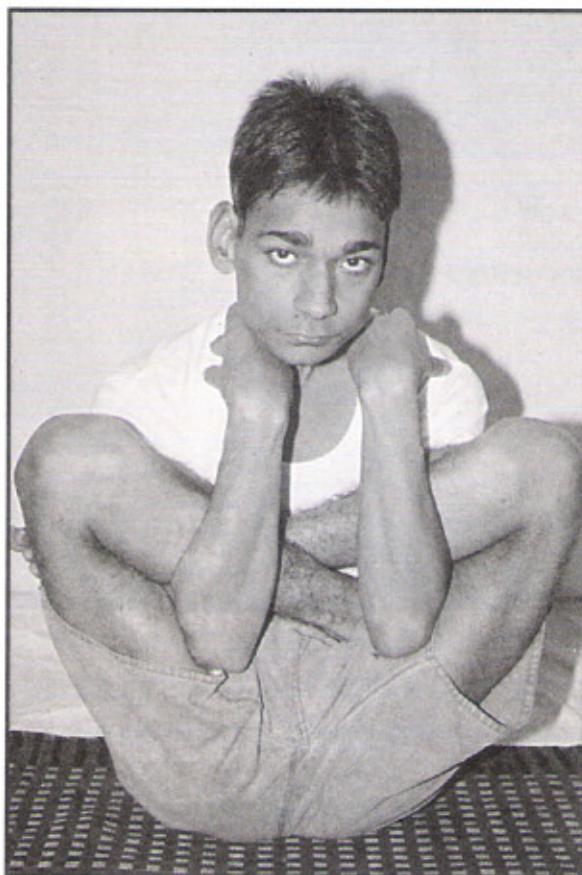
कूर्मासन

21. कूर्मासन - इस आसन में शरीर की आकृति कूर्म अर्थात् कछुआ की तरह होने के कारण इसे कूर्मासन कहते हैं।

विधि - दोनों पैरों को सामने फैलाकर इस तरह बैठें कि दोनों पैरों के बीच कुछ दूरी रहे। इसके बाद सामने झुकें और हाथों को घुटनों के नीचे ले जायें, हथेलियाँ खुली रहें, मस्तक जमीन पर रखें। इसके उपरान्त दोनों हाथों को जाँघों के नीचे पूर्व जैसी स्थिति में ही पीठ के पीछे ले जाकर एक-दूसरे से सम्बद्ध कर लें। घुटनों को ऊपर उठाकर तलवों को भूमि पर समतल रखें। ऐंडियों को उठाकर हाथों को शिथिल करें इसके बाद पूर्व की स्थिति में वापस आ जायें।

**लाभ -**

1. यह मन की वृत्तियों को एकाग्र करने में सहायक है।
2. इस आसन से पेट के विकार और रोग नष्ट होते हैं तथा यह भूख बढ़ाने में सहायक है।
3. इससे यकृत और प्लीहा के रोगों का निवारण होता है।
4. इससे शरीर का मोटापा दूर होता है और प्रमेह, मधुमेह, रजोविकार, अण्डकोष-वृद्धि आदि में इसके अभ्यास से नियन्त्रण होता है।
5. हर्निया, बवासीर और भगन्दर आदि में भी यह लाभ पहुँचाता है।

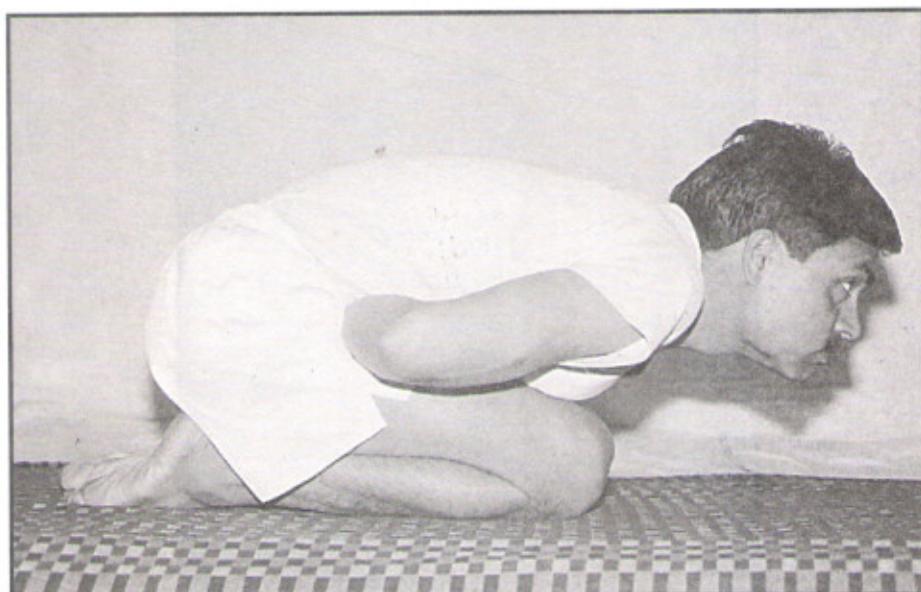
**उत्तानकूमसिन****22. उत्तानकूमसिन -**

**विधि -** पद्मासन में बैठकर दोनों जाँधों और पिण्डलियों के बीच से दोनों हाथों को डालकर कुक्कुटासन की स्थिति में

आ जायें। इसके बाद इसी स्थिति में पीठ के बल लेटकर दोनों हाथों की हथेलियों से ग्रीवा अथवा कन्धों को पकड़ने का अभ्यास करें। श्वास की स्थिति सहज रहे। जितनी देर आराम से हो सके करें।

**लाभ -**

1. यह मन की एकाग्रता में सहायक है।
2. इस से उदर के विकार दूर होते हैं।
3. इस से वक्ष पुष्ट होता है और हृदय दुर्बलता मिटती है।



**मण्डूकासन**

23. मण्डूकासन - इस आसन में शरीर की आकृति मण्डूक (मेंढक) की तरह हो जाती है इसलिये इसे मण्डूकासन कहते हैं।

**विधि -** वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों को पैरों के बगल में रखें। हाथ की अँगुलियाँ सामने की ओर हों, सिर को जाँघ व घुटने के समानान्तर तब तक झुकावें जब तक कि शरीर की स्थिति मेंढक के समान न दिखाई देने लगे। श्वास सहज हो।

**लाभ -**

1. यह हाथों एवं पैरों की मांस पेशियों को मजबूत बनाता है।
2. यह मन को एकाग्र करने में सहायक है।



उत्तानमण्डुकासन

23. उत्तानमण्डुकासन - इसके लिये वज्रासन में बैठकर मण्डुकासन की स्थिति में आ जायें। उसके बाद बायें से दाहिने हाथ की कोहनी को और दायें हाथ से बायें हाथ की कोहनी को पकड़ कर सिर पर रखें। यह आकार ऐसा लगेगा मानो मेढ़क जल पर तैर रहा हो।

**लाभ-** इस आसन के अभ्यास से शरीर सन्तुलित रहता है और पानी में तैरने की शक्ति बढ़ती है।

25. वृक्षासन - वृक्ष के समान सीधे शरीर की आकृति इस आसन से बनती है इसलिये इसे वृक्षासन कहते हैं। इस आसन का अभ्यास दो तरह से किया जा सकता है।

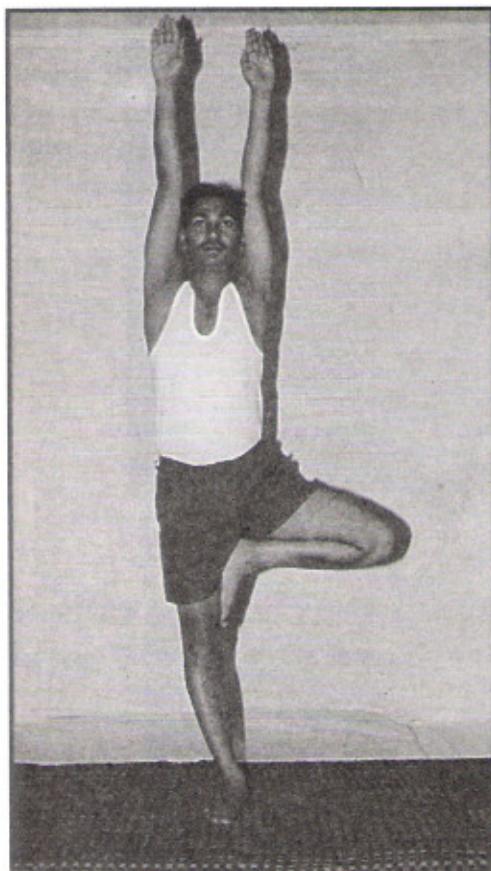
**विधि -** (1) सीधे खड़े होकर अन्दर श्वास भरते हुए दोनों हाथों को उठाकर सिर के अगल-बगल ऊपर एक सीध में रखें। यह वृक्षासन की पहली विधि है। (2) सीधे खड़े होकर बायें पैर को जानु-मूल पर दायें पैर पर रखकर एक ही पैर से वृक्ष के समान सीधा खड़ा रहें। इसे पैरों को परस्पर बदलकर भी किया जा सकता है। यह वृक्षासन की दूसरी विधि है।

**लाभ -**

1. इस आसन से पैरों का कम्पन और सीने का दर्द नष्ट होता है।
2. इस आसन से शरीर में बल एवं मन में स्थिरता आती है।

26. गरुडासन - इस आसन में शरीर की आकृति गरुड की तरह बन जाने के कारण इसे गरुडासन कहते हैं।

**विधि:** - सीधे खड़े होकर दाहिने पैर को सामने से बायें पैर पर इस प्रकार लपेटें कि जाँच के ऊपर जाँच एवं घुटने के



वृक्षासन



गरुडासन

ऊपर घुटना रहे। इसी प्रकार दाहिने हाथ को भी बायें हाथ पर लपेटकर दोनों हाथों को नमस्कार की मुद्रा में मिलाकर रखें। शरीर की इस स्थिति में धीरे-धीरे नीचे बैठने का प्रयास करें। कुछ समय रुककर सामान्य स्थिति में आ जायें। पैर बदल कर भी यह अभ्यास किया जा सकता है।

#### लाभ -

1. यह घुटनों एवं पैर के दर्द को ठीक करता है, साइटिका और हाथ-पैर के वात का निवारण करता है।
2. यह पैर की सन्धियों को लचीला बनाता है।
3. यह बहुमूत्र तथा किडनी के विकारों को दूर करता है।



वृषासन

सावधानी - गर्भवती महिलाओं को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

27. वृषासन - इस आसन में शरीर की आकृति वृष (बैल) की तरह होने से इसे वृषासन कहते हैं।

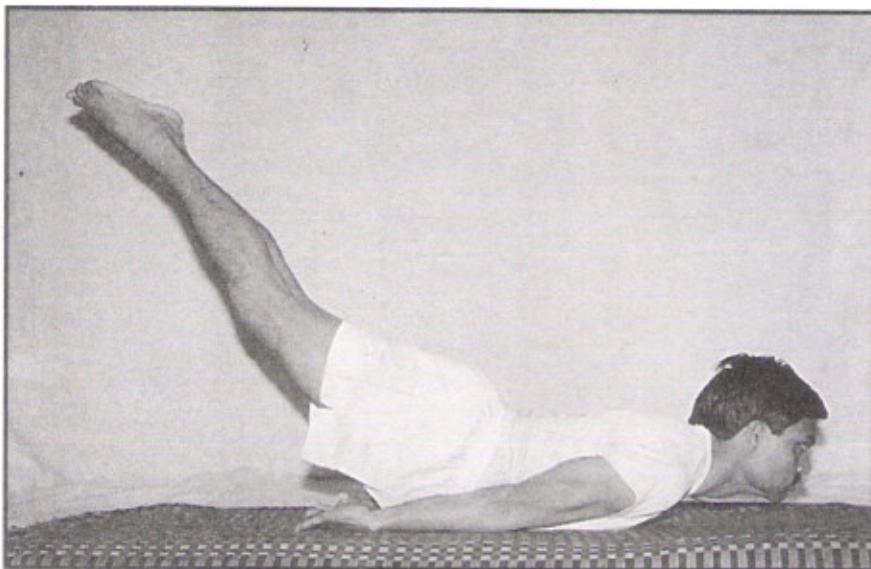
**विधि** - दाहिनी एँडी पर गुदा को टिकाकर उसके बाद दूसरे पैर को बांयी ओर से घुमाकर पीछे की ओर जमीन पर स्पर्श करायें।

**लाभ** -

1. इससे पैरों में शक्ति आती है।
2. इससे शरीर में वीर्य का वर्धन होता है और ब्रह्मचर्य का तेज बढ़ता है।

28. शलभासन - इस आसन में शरीर की आकृति शलभ-टिड़ा (पतंगविशेष) - की तरह होने से इसे शलभासन कहते हैं।

**विधि** - पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को बाँधकर कमर जोड़ पर (नाभि के नीचे) रखें। प्रारम्भ में श्वास लेते हुये बाये एवं दायें पैर को क्रम से अधिकाधिक जमीन से ऊपर उठावें। इसके बाद पुनः श्वास लेते हुये दोनों पैर, धड़, सिर को ऊपर उठावें। जब तक श्वास रोक कर इस स्थिति में रह सकें, रहने का प्रयास करें। श्वास छोड़ते हुये वापस पूर्व की स्थिति में आवें।



**शलभासन**

**लाभ -**

1. यह मेरुदण्ड के कड़ेपन एवं टेढ़ेपन को दूर करके दर्द दूर करता है।
2. यह उदर से सम्बन्धित विकारों में लाभ पहुँचाता है।
3. यह लीवर, पैन्क्रियास, किंडनी तथा पैर के सभी अवयवों को पुष्ट तथा सबल बनाने में सहायक है।

**सावधानी -** जिस व्यक्ति को पेप्टिक अल्सर, हार्निया तथा आँत का कष्ट हो उसे शलभासन का अभ्यास करना चाहिए।

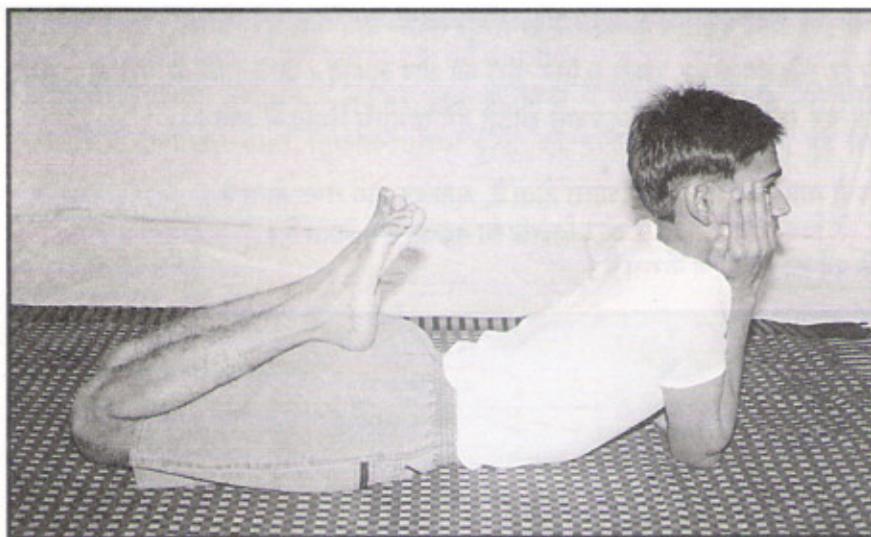
**29. मकरासन -** इस आसन में शरीर की आकृति मकर-मगर नामक जलजीव विशेष-की तरह हो जाने के कारण इसे मकरासन कहते हैं।

**विधि -** पेट के बल लेटकर हाथ की कोहनियों के सहारे सिर और कन्धों को उठाकर हथेलियों से ठोड़ी को सहारा दें। श्वास सामान्य रहे। दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर रहनी चाहिए।

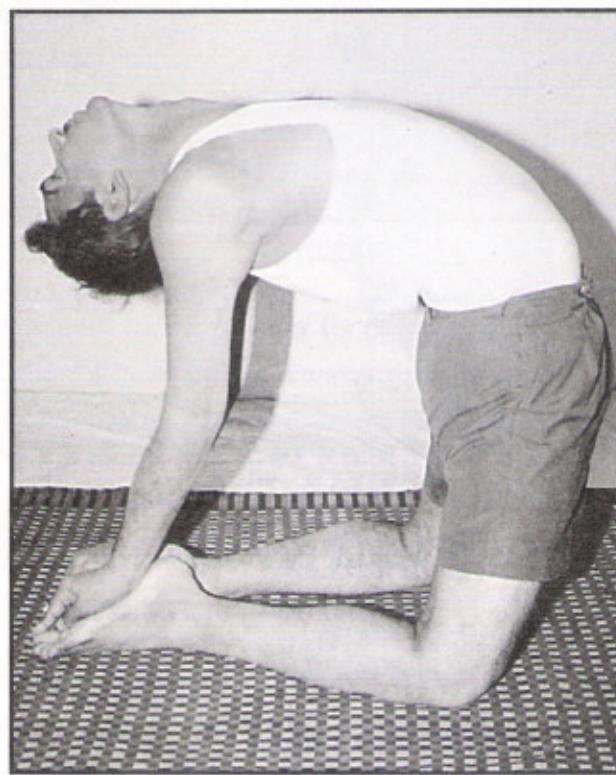
**लाभ -**

1. यह कमर दर्द दूर करता है, मेरुदण्ड को लचीला बनाने में सहायक है।
2. यह दमा, श्वास तथा फेफड़े की बीमारियों में लाभदायक है।

**30. उष्ट्रासन -** इस आसन में शरीर की आकृति उष्ट्र की तरह बनने से इसे उष्ट्रासन कहते हैं।



मकरासन

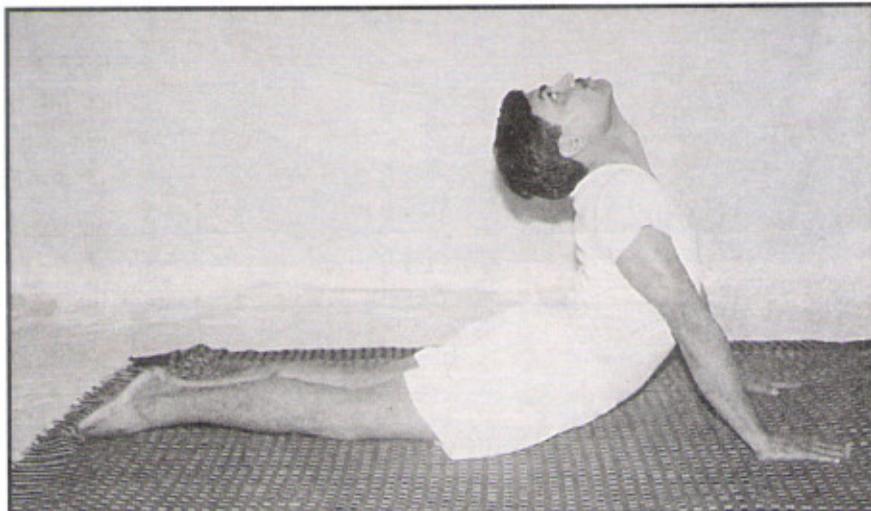


उष्ट्रासन

**विधि -** इस आसन के लिये वज्रासन में बैठकर दोनों घुटनों के बीच कुछ दूरी बनायें। इसके बाद घुटने के बल खड़े होकर श्वास अन्दर लेते हुये कमर, छाती व सिर पीछे की ओर झुकायें। दोनों हाथों से पैरों के टखनों को पकड़ें और जब तक श्वास अन्दर रोक सकें रोकें फिर श्वास छोड़ते हुये सामान्य स्थिति में आवें।

**लाभ -**

1. इस आसन से वात-पित्त का प्रकोप शान्त होता है, भगन्दर रोग नष्ट होता है।
2. इस से पेट के विकार नष्ट होते हैं और तिल्ली का बढ़ना रुक जाता है।
3. यह पीठ के दर्द का निवारण करता है।



**भुजंगासन**

31. **भुजंगासन-** भुजंग का अर्थ सर्प होता है इसलिये इस आसन को सर्पासन भी कहते हैं। इस आसन में शरीर की आकृति सर्प के फण की तरह हो जाती है इसलिये इसे भुजंगासन (सर्पासन) कहते हैं।

**विधि -** पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को दोनों बगल में रखकर दोनों पैरों को सीधे रखें। इसके बाद हथेलियों को दोनों बगल में लगाकर श्वास लेते हुये धीरे-धीरे नाभि से ऊपर छाती, गर्दन एवं सिर को जमीन से ऊपर उठायें। हाथों पर बल देते हुये पीठ एवं सिर को पीछे की ओर यथासम्भव ले जायें। जब तक श्वास अन्दर रोक सके राकें, फिर श्वास छोड़ते हुये पूर्व स्थिति में आ जायें।

**लाभ -**

1. यह मेरुदण्ड को लचीला बनाता है।
2. यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर पाचन शक्ति बढ़ाता है और कब्ज दूर करता है।
3. यह लीवर को पुष्ट व शक्तिशाली बनाता है।
4. यह स्त्रियों के अण्डाशय तथा गर्भाशय को सबल बनाने में उपयोगी है।

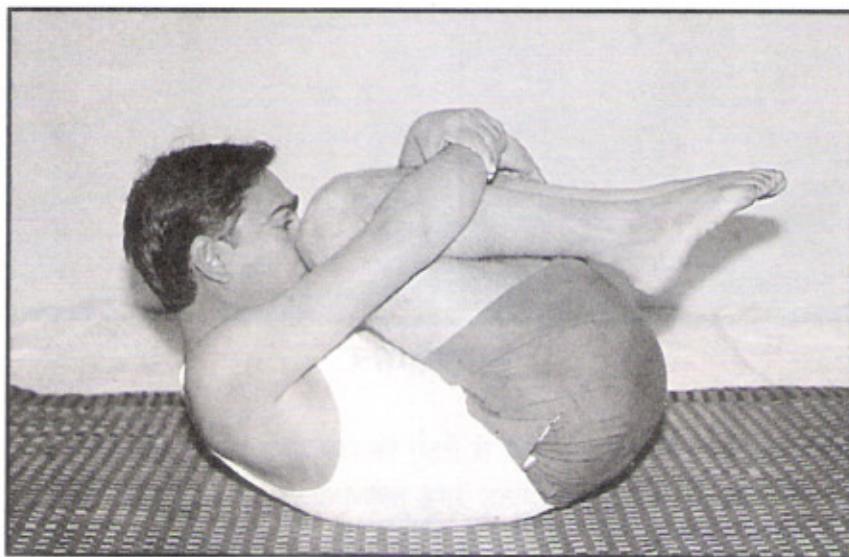
**सावधानी** – जिस व्यक्ति के पेट में घाव हो, जिसे हार्निया की शिकायत हो या आँत की बीमारी हो उसके लिये यह आसन वर्जित है।

**32. योगासन** – पद्मासन अथवा सुखासन में बैठकर पूरक की क्रिया में वायु अन्दर लेना, उसे थोड़े समय के लिये रोकना और रेचक क्रिया द्वारा उसे बाहर निकालना तथा द्रुष्टि को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर रखना यहीं योगासन है।

**लाभ** –

1. इस से उदर विकार नष्ट होते हैं।
2. यह हृदय को शक्ति प्रदान करता है।

उपर्युक्त 32 आसन हठयोग-साधना में विशेष उपयोगी बताये गये हैं। जिज्ञासु साधकों की जानकारी के लिए कुछ अन्य महत्वपूर्ण आसन इस प्रकार हैं-



**पवन-मुक्तासन**

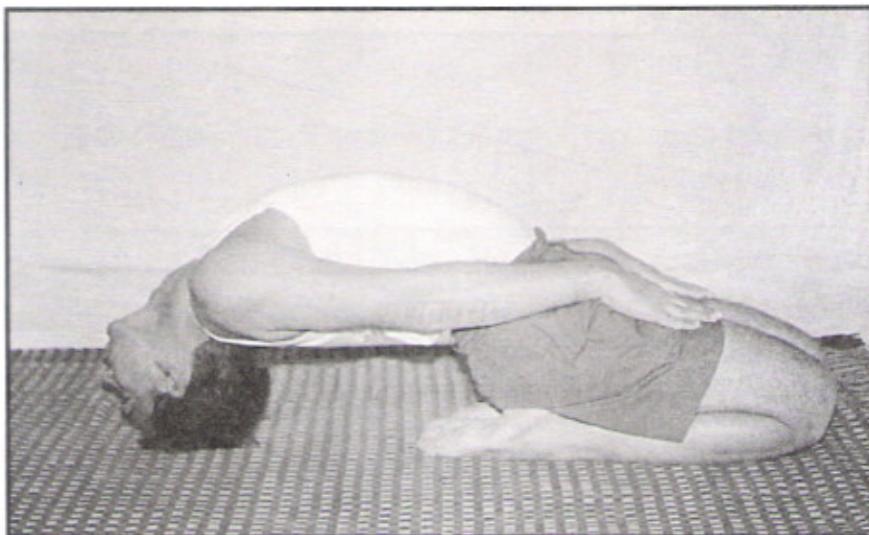
**33. पवन-मुक्तासन** – जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस आसन द्वारा मुख और गुदा द्वार से उदान और अपान वायु शरीर से बाहर निकाली जाती है इसलिये इसे पवन मुक्तासन कहते हैं।

**विधि** – पेट के बल लेटकर श्वास छोड़ते हुये बाँये पैर को घुटने से मोड़ते हुए पेट को दबायें तथा बाँये पैर के घुटने पर नाक को लगायें, जितनी देर तक हो सके रोकें फिर श्वास लेते हुए सामान्य स्थिति में आ जायें। पुनः इस क्रिया को दाँयें पैर के साथ और फिर दोनों पैरों के साथ एक साथ दुहरायें।

लाभ -

1. यह वात-जन्य पीड़ाओं और रोगों का नाश करता है।
2. यह वात, पित्त और कफ के प्रकोपों का निवारण करता है।
3. इससे पेट की शुद्धि होती है और यह गठिया के रोग में बड़ा लाभप्रद है।

सावधानी: - गर्भवती महिलाओं को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।



**सुप्तवज्रासन**

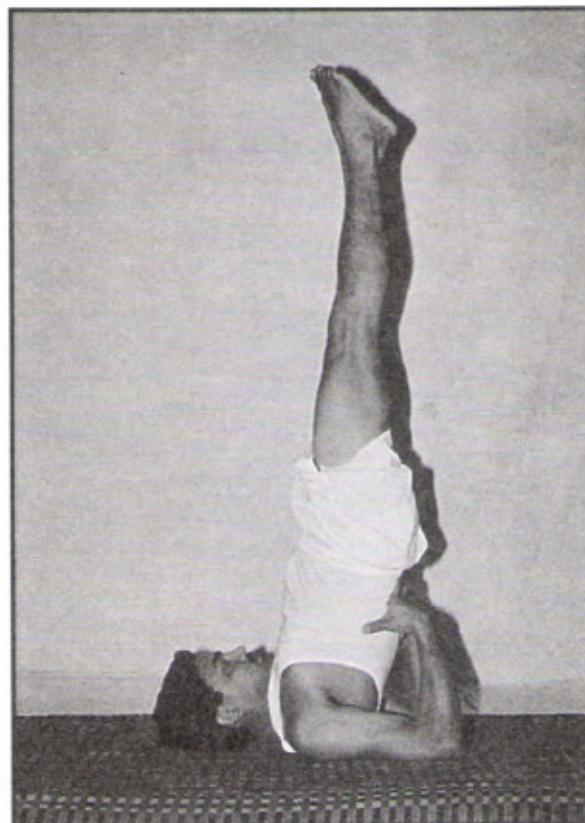
#### 34. सुप्तवज्रासन -

विधि - वज्रासन में बैठकर श्वास लेते हुये भुजाओं और कोहनियों के सहारे पीछे की ओर तब तक झुकें जब तक सिर जमीन में धनुषाकार न बन जाये, घुटने जमीन पर सटे हों, हाथों को वक्ष या जाँध पर रखें। नेत्र बन्द करके शरीर को ढीला छोड़ दें। यही सुप्त-वज्रासन है।

लाभ -

1. इस आसन के अभ्यास से आमाशय के रोग, कब्ज आदि ठीक होते हैं।
2. शरीर को मस्तिष्क से जोड़ने वाली रीढ़ की मुख्य स्नायुओं में दबाव सामान्य रखने के लिये यह आसन उपयोगी है।

सावधानी - रीढ़ के निचले भाग के रोग, हड्डी की टी०बी० से पीड़ित रोगियों को इसके अभ्यास में सावधानी बरतनी चाहिये।



सर्वांगासन

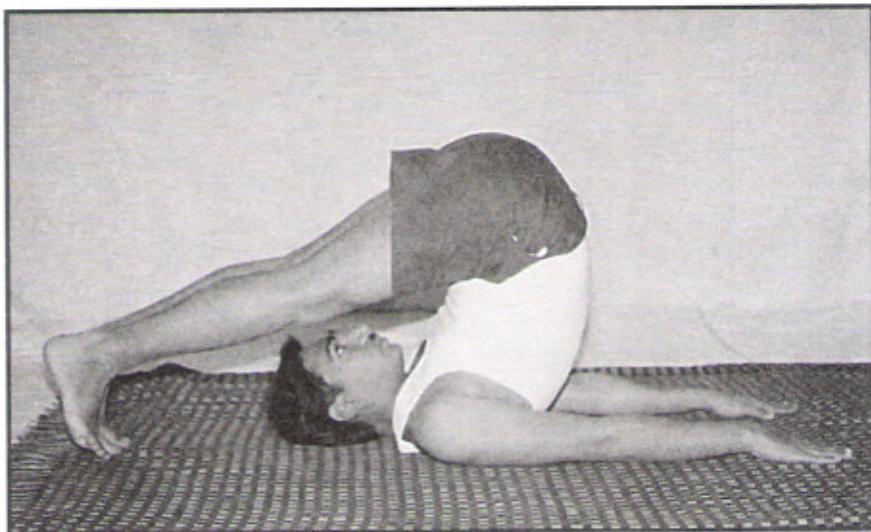
35. सर्वांगासन- पीठ के बल लेटकर दोनों पैरों को घुटने से मोड़ें तथा दोनों पैरों को ऊपर करें इसके बाद दोनों हाथों से कमर को सहारा देते हुये शरीर को यथाशक्ति ऊपर उठायें। दोनों हाथों को कमर के आस-पास इस प्रकार लगायें कि ऊपर उठा कंठ तक का शरीर समसूत्र (सीधा) रहे। जितनी देर इस स्थिति में रुक सकें रुककर पैर को वापस जमीन पर धीरे-धीरे ले आद्ये। इस आसन से प्रायः सभी अंगों का व्यायाम हो जाता है इसलिए इसे सर्वांगासन कहते हैं।

#### लाभ -

1. इस आसन के अभ्यास से थायराइड और पैरा थायराइड ग्रन्थियों के सीधे प्रभावित होने के कारण शरीर का सन्तुलित विकास होता है।
2. इससे सभी प्रकार के वात के रोग नष्ट होते हैं।
3. यह यकृत, तिल्ली के रोग में लाभ पहुँचाता है।
4. यह पैरों की थकान और कमजोरी को दूर करता है और हायड्रोसील तथा हाथी पाँव रोग में लाभ करता है।

**विशेष -** सर्वांगासन के बाद इसके विपरीत आसन मत्स्यासन, उष्ट्रासन अथवा सुप्तवज्ज्ञासन का अभ्यास करना चाहिए।

**सावधानी -** जिस व्यक्ति को उच्चरक्तचाप और हृदय का रोग हो, यकृत और तिल्ली का कार्य ठीक से न होता हो उसे इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

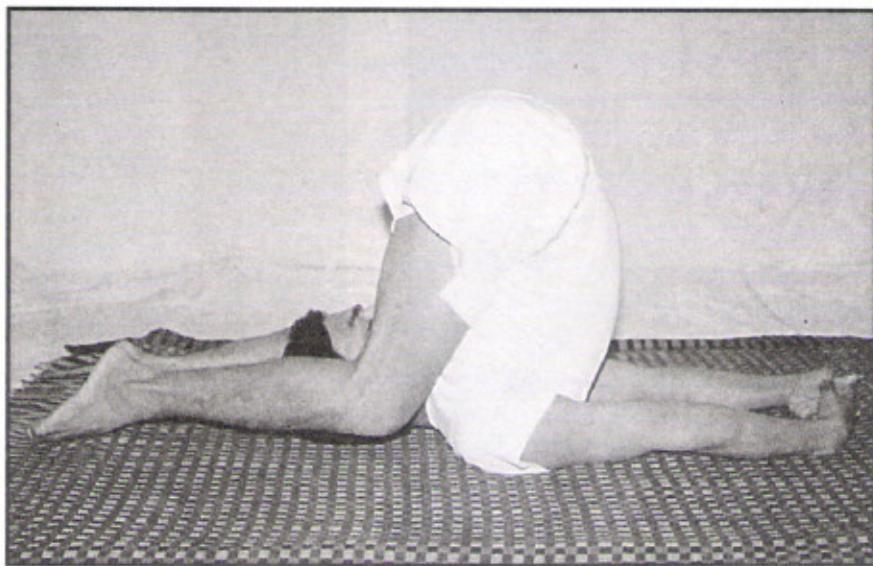


**हलासन**

**36. हलासन -** इस आसन में शरीर की आकृति हल के समान दिखायी पड़ती है इसलिए इसे हलासन कहते हैं। इसके लिए सर्वांगासन की स्थिति में जाकर पैरों को पीछे तब तक ले जायें जब तक कि पैरों की अँगुलियां जमीन का स्पर्श न करें फिर दोनों हाथों से पैरों के अंगूठों को पकड़े रहें या उन्हें पीठ पर सहारा देने के लिये रख लें। यही हलासन है। पूर्व की स्थिति में आने के लिये दोनों हाथों से कमर पर सहारा देकर धीरे-धीरे वापस आ जायें।

#### **लाभ -**

1. हलासन से उदर विकार दूर होते हैं, जठराग्नि प्रदीप्त होती है और मधुमेह दूर होता है।
2. इससे आँतों की क्रियाशीलता बढ़ती है, पीठ कमर की कमजोरी दूर होती है।
3. इससे बवासीर ठीक रहता है और
4. मेरुदण्ड लचीला बनता है।



कर्णपीडासन

37. कर्णपीडासन - हलासन की स्थिति में जाकर दोनों हाथ दोनों बगल में एक सीधे में फैलाकर पैरों को सिर के पीछे धीरे-धीरे ले जाते हुये जमीन पर इस प्रकार स्थिर करें कि दोनों पंजे जमीन पर टिक जायँ तथा दोनों कानों से दोनों घुटने सट जायँ। घुटनों से कानों के दबाव के कारण इसे कर्णपीडासन कहते हैं।

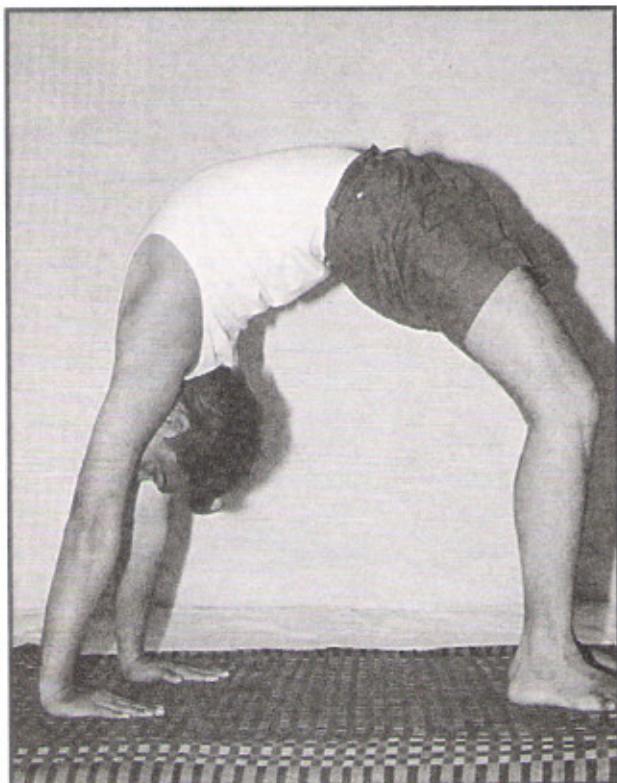
**लाभ -**

1. इस आसन से रक्त विकार नष्ट होते हैं।
2. यह कर्णशूल, बहिरेपन आदि में लाभ पहुँचाता है।
3. इससे नेत्र ज्योति बढ़ती है
4. पेट साफ रहता है तथा भूख अच्छी लगती है।

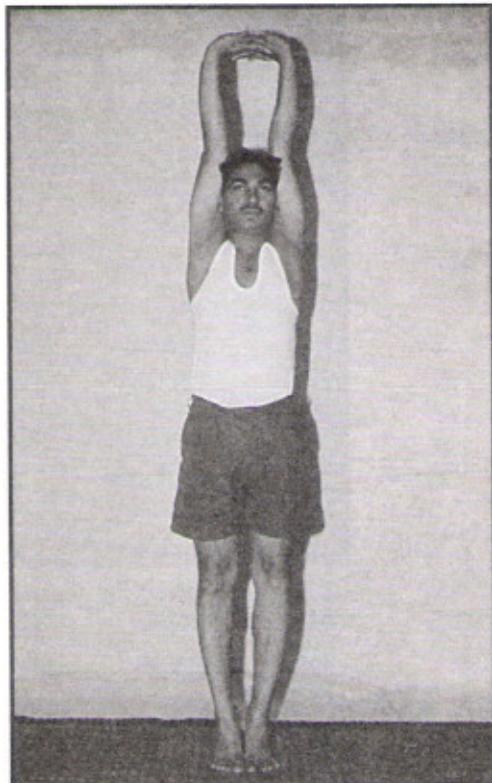
38. चक्रासन - पीठ के बल लेटकर दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर तलुओं के सहारे शरीर को खड़ा रखें। दोनों हाथों को दोनों कानों के पास इस प्रकार रखें कि अँगुलियँ कन्धे की ओर हो, फिर श्वास लेते हुये हाथ व पैर के सहारे पूरे शरीर को अब ऊपर उठायें। हाथों को पैरों की ओर ले जाकर शरीर को गोलाकार बनाने का प्रयास करें। इस प्रकार चक्राकार आकृति के कारण यह चक्रासन है। पूर्व स्थिति में आने के लिये श्वास छोड़ते हुये धीरे-धीरे जमीन पर वापस आ जायें।

**लाभ -**

1. इस आसन के अभ्यास से हाथ, पैर व जाँघ के स्नायु-तन्त्र सबल होते हैं।



चक्रासन



ताडासन

2. नाडियाँ शुद्ध होती हैं।
3. यह मधुमेह, प्रमेह, कण्ठमाला में लाभ पहुँचाता है।

#### सावधानी -

1. इस आसन का अभ्यास उन लोगों को नहीं करना चाहिए जिन्हें उच्च रक्त चाप, हृदय रोग, पेट के भीतर घाव, दूषित आँत, अस्थिदोष एवं नेत्र दोष हों।

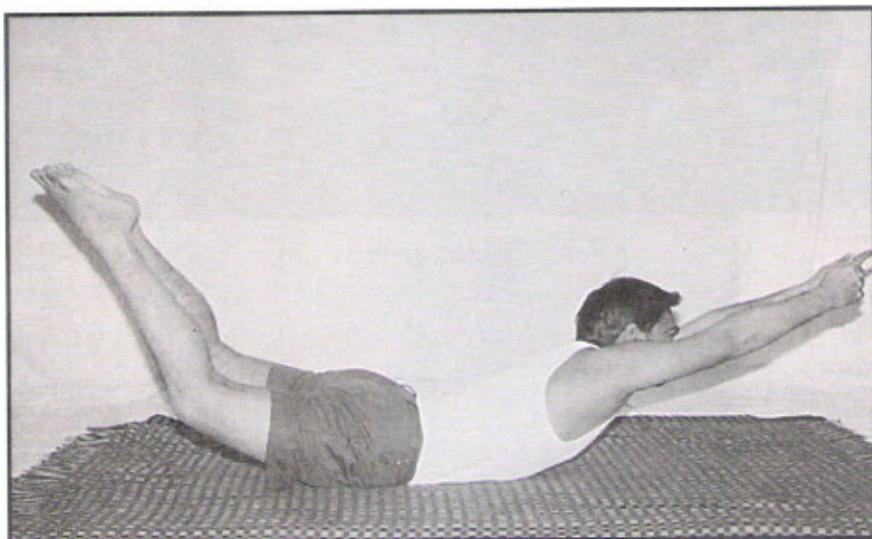
**39. ताडासन -** शरीर की ताडवृक्ष जैसी स्थिति के कारण यह आसन ताडासन कहलाता है।

**विधि -** दोनों पैरों में आधा फीट का फासला बनाकर खड़े हों। हाथों को ऊपर उठाकर अँगुलियों को आपस में इस

प्रकार फँसा लें कि हथेलियाँ ऊपर रहें और उन्हें सिर पर रख लें। अब श्वास अन्दर लेते हुये हाथों को ऊपर फैलायें तथा पंजों के बल अधिक से अधिक ऊपर उठाकर सम्पूर्ण शरीर में तनाव पैदा करें।

**लाभ -**

1. यह लम्बाई बढ़ाने में सहायक है तथा इस से मोटापा दूर होता है।
2. इस से मेरुदण्ड लचीला एवं सक्रिय होता है तथा स्नायु-संस्थान सशक्त बनता है।



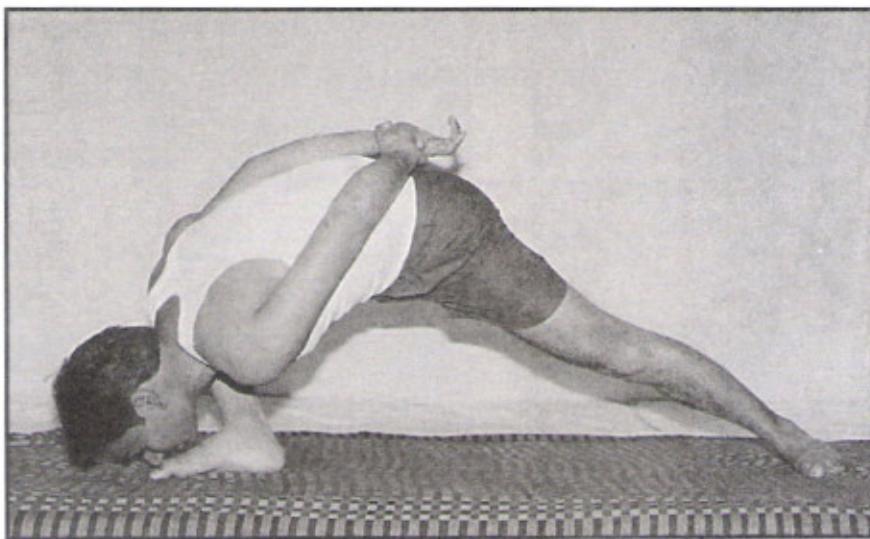
**नौकासन**

40. **नौकासन** - इस आसन से शरीर की आकृति नौका की तरह बनने के कारण इसे नौकासन कहते हैं।

**विधि -** पेट के बल लेटकर दोनों पैरों को सीधा रखें, दोनों हाथों को भी सिर के ऊपर से आगे करके नमस्कार की मुद्रा में सीधे रखें। फिर श्वास लेकर पेट को फुला लें तथा हाथ और पैर में तनाव से शरीर को इस तरह से ऊपर उठायें कि आगे से नमस्कार की मुद्रा में दोनों हाथ सिर और वक्ष स्थल नाभि तक ऊपर उठे तथा पीछे की ओर से दोनों पैर, जाँघ पूरा उठा रहें। फिर पेट के बल आगे पीछे नौका की तरह शरीर को हिलायें।

**लाभ -**

1. स्नायु की दुर्बलता और तनाव से पीड़ित व्यक्ति के लिये यह आसन उपयोगी है।
2. पेट और औंतों के कृमि इसके अभ्यास से बाहर निकल जाते हैं।



**वीर्यस्तम्भासन**

#### 41. वीर्यस्तम्भासन -

**विधि** - सीधे खड़े होकर दोनों पैरों को फैला दें। इसके बाद दोनों हाथों को कमर के पीछे ले जाकर बायें हाथ से दायें हाथ को पकड़ लें। बायें पैर को घुटने से मोड़कर स्थापित करें तथा उसके पंजे को नाक से स्पर्श करें। इस क्रिया को दूसरे पैर के साथ भी दुहरायें।

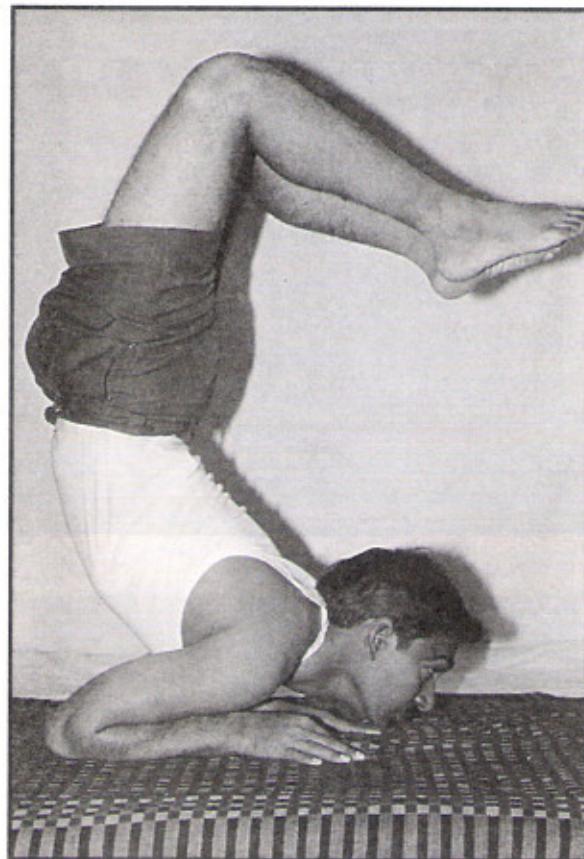
#### लाभ -

1. इस आसन के अभ्यास से भुजदण्डों, कमर तथा हथेलियों में शक्ति आती है, सुटृहता का संचार होता है।
2. वीर्य के सभी विकार नष्ट होते हैं।
3. मूत्र-विकारों का निवारण होता है।
4. मधुमेह आदि अनेक रोगों में इस से लाभ होता है।

#### 42. वृश्चिकासन -

इस आसन से शरीर की आकृति, वृश्चिक, अर्थात् बिच्छू की तरह दिखाई देती है इसलिये इसे वृश्चिकासन कहते हैं।

**विधि** - इस आसन का अभ्यास पेट के बल लेट कर, कन्धों को कोहनियों के सहारे ऊपर उठाकर, पैरों की ओर सिरपर्णन्त मोड़कर किया जाता है। पैरों को पीठ की ओर से सिरपर्णन्त उठाने के लिये धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिये। प्रारम्भ में किसी दीवार आदि का सहारा लिया जा सकता है।



### वृशिकासन

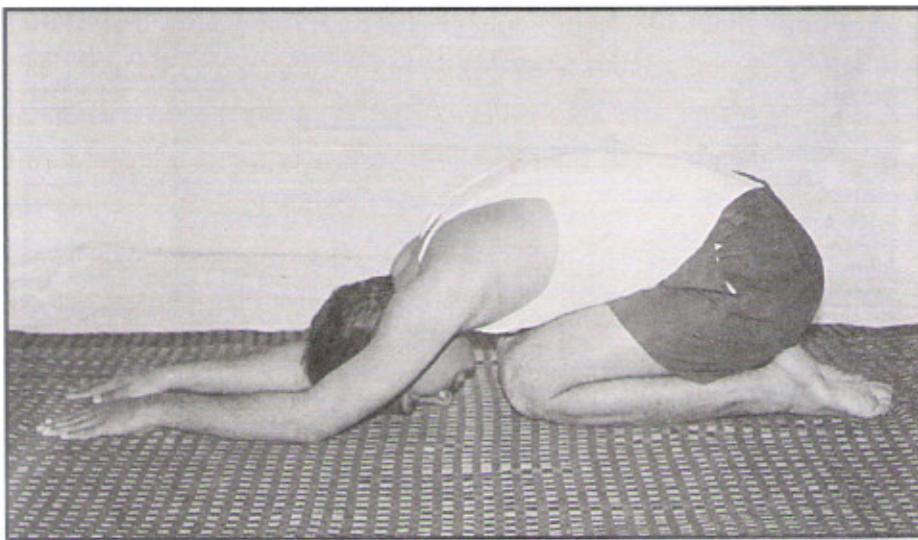
लाभ -

1. इस आसन के अभ्यास से हाथ और बाहु में बल आता है, पेट और आँत की शुद्धि होती है, तथा शरीर में स्फूर्ति आती है।
2. इससे मस्तिष्क और पीयूष-ग्रन्थि में पर्याप्त रक्त-संचार होता है।
3. इससे बवासीर रोग नष्ट होता है तथा शरीर में व्याप्त विषैले तत्त्व नष्ट होते हैं।

सावधानी - महिलाओं को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

43. शशकासन - इस आसन में शरीर की आकृति खरगोश की तरह होने के कारण इसे शशकासन कहते हैं।

विधि - बज्जासन में बैठकर दोनों हाथों को श्वास लेते हुये सिर के ऊपर उठायें, रीढ़ की हड्डी सीधी रहे। श्वास



### शशकासन

रोककर जितनी देर सम्भव हो सके स्थित रहें फिर श्वास लेते हुये वापस पूर्व स्थिति में आ जायें।

**लाभ -** यह मानसिक चिन्ता एवं तनाव को दूर करके क्रोध पर नियंत्रण करने में सहायक है।

**44. हंसासन -** इस आसन में शरीर की आकृति हंस की तरह होने के कारण इसे हंसासन कहते हैं।

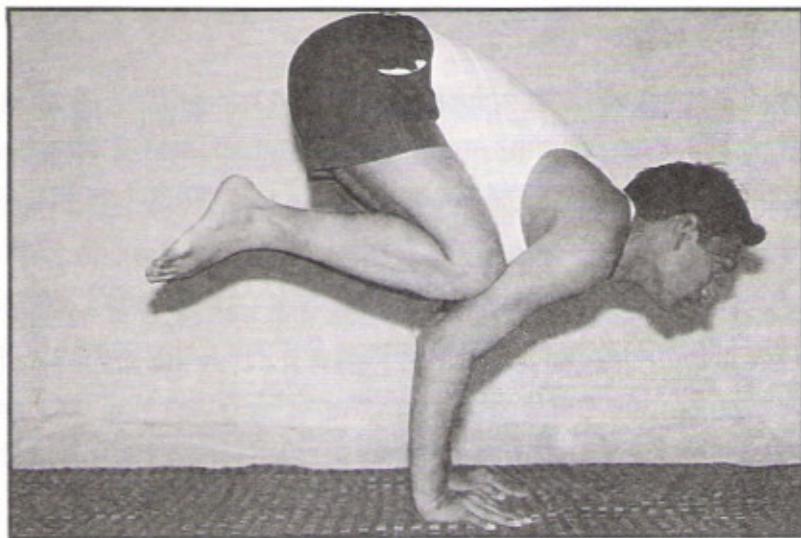
**विधि -** उकड़ू बैठकर हाथों की कुहनियों को नाभि के दोनों ओर लगायें। हथेलियाँ जमीन पर लगाकर भुजाओं एवं कुहनियों पर उदर-प्रदेश को टिका दें। धीरे-धीरे सामने झुकें, पैरों को पीछे की ओर सीधा कर घुटनों से मोड़ लें।

**लाभ -**

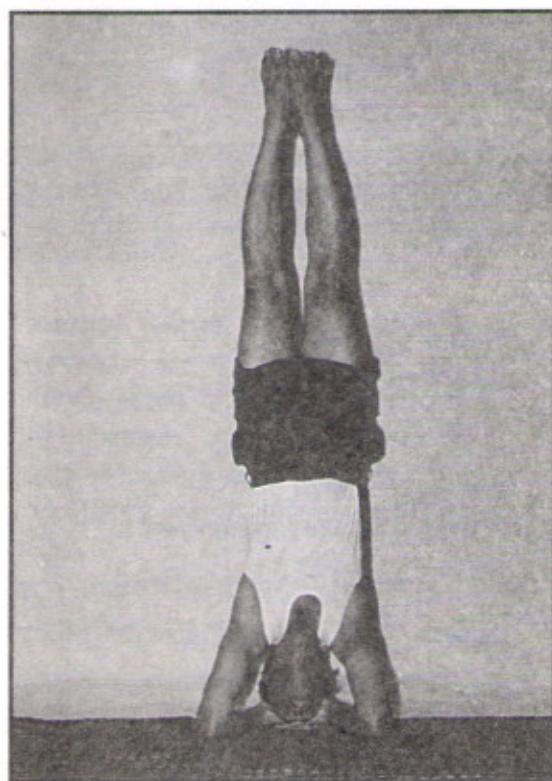
1. इस आसन के अभ्यास से स्नायुओं को शक्ति मिलती है।
2. अरुचि, अपच, खाँसी आदि रोगों का इस आसन से शमन होता है।

**45. शीर्षासन -** शीर्ष अर्थात् शिर के बल खड़े होकर किये जाने के कारण इसे शीर्षासन कहते हैं।

शीर्षासन एक प्रमुख आसन ही नहीं, आसनों का राजा है। योगी और गृहस्थ दोनों जीवन को संयमित और शरीर तथा मन को स्वस्थ रखने के लिये शीर्षासन का अभ्यास कर सकते हैं। हठयोग में शीर्षासन विपरीतकरणी मुद्रा के रूप में स्वीकार किया गया है। इस महत्वपूर्ण यौगिकक्रिया में सम्पूर्ण शरीर का भार सिर को हथेलियों के सहारे जमीन पर लगाते हुये स्थिर किया जाता है। इसका सिद्धान्त है कि ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्रार से द्रवित अमृत का नाभिदेश में स्थित सूर्य द्वारा शोषण न हो जाय, इसलिये शीर्षासन अथवा विपरीतकरणी मुद्रा का विधान है।



हंसासन



शीर्षसिन

**विधि -**

1. सबसे पहले बैठकर दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर पीछे ले जाकर वज्रासन में बैठें। इसके बाद सामने की ओर झुकते हुये कोहनियों को थोड़े अन्तर पर जमीन पर टिकाकर हथेलियों को आपस में बाँधकर जमीन पर रखना चाहिए। दोनों कोहनियों के बीच कम से कम एक फुट का अन्तर रहे। बँधी हथेलियों पर सिर का शीर्ष भाग स्थित करें।
2. सिर दोनों हाथों के मध्य में रखकर घुटनों को जमीन से ऊपर उठायें।
3. धीरे-धीरे पैरों को धड़ के समीप लायें, घुटनों को मोड़ें, पीठ सीधी तभी रहे, जाँघों का दबाव उदर एवं वक्ष के निचले भाग पर रहे फिर धीरे-धीरे शरीर का वजन पैरों की अँगुलियों से हटाकर हाथ और सिर पर निर्भर करें। पहले एक पैर को फिर दूसरे पैर को जमीन से कुछ ऊपर उठायें। नितम्बों को उठाकर सीधा करें। इससे पैर ऊपर उठ जायेंगे। घुटनों को सीधा करें इस तरह शरीर सीधा एवं उलटा हो जायेगा। यही शीर्षासन है। इसी प्रकार धीरे-धीरे रुकते हुये सामान्य स्थिति में आवें। श्वास सामान्य रहे।

**लाभ -**

1. इस आसन के अभ्यास से मस्तिष्क में पर्याप्त रक्त पहुँचता है जिससे मस्तिष्क के सूक्ष्म सेल, तन्तु आदि पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों को ग्रहण करके सक्रिय और स्वस्थ होते हैं जिस से कार्यक्षमता बढ़ती है, स्मरण शक्ति का विकास होता है।
2. इस से शरीर में रक्त-संचार ठीक से होता है जिससे शरीर की प्रतिरोधक शक्ति में वृद्धि होती है।
3. महिलाओं के गर्भाशय के विकार, मासिक की गड़बड़ी आदि रोग इस से नष्ट होते हैं।
4. मेरुदण्ड के भीतर नीचे की ओर का सुषुम्णा का प्रवाह मस्तिष्क की ओर हो जाता है। वीर्य उर्ध्वगामी होता है।

**विशेष -**

1. शीर्षासन के बाद ताड़ासन एवं श्वासन अवश्य करें।
2. शरीर-शोधन के बाद ही शीर्षासन का अभ्यास करना चाहिए।

**सावधानी -**

1. मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों में इसका अभ्यास न करें।
2. उच्च रक्तचाप, चक्कर आने की स्थिति में भी इसका अभ्यास न करें।
3. रीढ़ की हड्डी के विकार में भी इसका अभ्यास वर्जित है।

## मुद्रा

हठयोग-साधना में योग-सिद्धि के जो सात साधन बताये गये हैं उनमें मुद्रा तीसरे स्थान पर है। शरीर की वह विशिष्ट क्रिया जिस से शरीर के किसी अवयव विशेष को स्थिति विशेष में रखा जाता है, “मुद्रा” कहलाती है। यह शरीर को स्वस्थ रखने के साथ-साथ आत्मिक बल में भी वृद्धि करती है, जो चित्त को एकाग्र करने तथा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में भी सहायक है। मुद्राओं के अभ्यास से इन्द्रियाँ बाह्य जगत् से सम्बन्ध विच्छेद कर अन्तमुखी होकर प्रत्याहार की स्थिति निर्मित करती है। यद्यपि मुद्राओं का उद्देश्य आध्यात्मिक है तथापि मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इनका उपयोग नकारा नहीं जा सकता। हठयोग के ग्रन्थों में मुद्रा और बन्ध का संयुक्त विवरण एक साथ प्राप्त होता है। बन्ध का शाब्दिक अर्थ है “बांधना” अर्थात् शरीर के अंग विशेष को धीरे-धीरे शक्तिपूर्वक संकुचित कर बांधना ही बन्ध है। यह अन्तः शारीरिक प्रक्रिया है। इसके द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों तथा नाड़ियों को नियंत्रित किया जा सकता है। हठयोग-प्रदीपिका में मुद्राओं का विवरण इस प्रकार मिलता है। यथा-

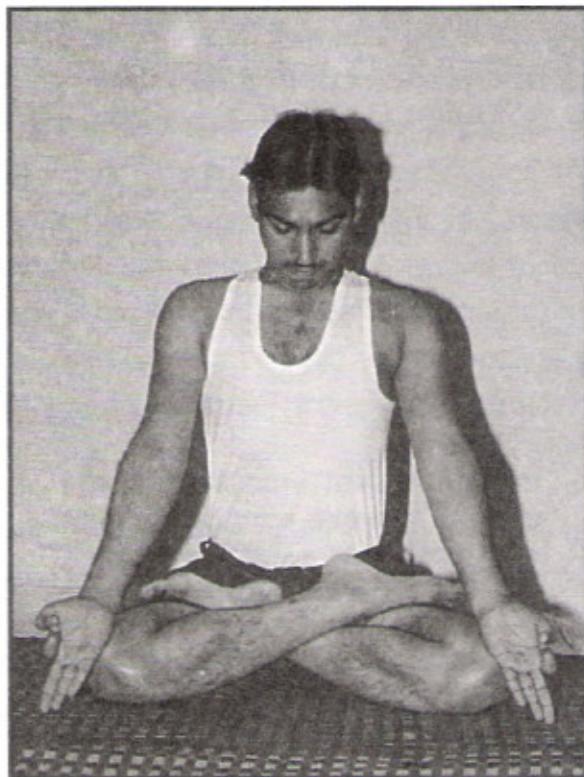
महामुद्रा महाबन्धो महावेद्धश्च खेचरी ।  
उड्डीयानं मूलबन्धश्च बन्धो जालन्धराभिधः ।  
करणी विपरीताख्या बज्रोली शक्तिचालनम् ।  
इदं हि मुद्रादशकं जरामरण-नाशकम् ।

अर्थात् महामुद्रा, महाबन्ध, महावेद्ध, खेचरी, उड्डीयान, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, बज्रोली, शक्तिचालनी यह दश मुद्रायें जरा-मरण को नष्ट करने वाली बतायी गयी हैं। इसी प्रकार घेरण्ड-संहिता में मुख्य रूप से पच्चीस मुद्राओं का वर्णन प्राप्त होता है। यथा-

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम् ।  
मूलबन्धं महाबन्धं महावेद्धश्च खेचरी ।  
विपरीतकरणी योनि बज्रोली शक्तिचालिनी ।  
तडागीमाण्डवी मुद्रा शाम्भवीपञ्चधारणा ॥ ।  
आश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भूजंगिनी ।  
पञ्चविंशति मुद्राः वै सिद्धिदाश्चेहयोगेनाम् ॥ ।

अर्थात् महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान-बन्ध, जालन्धर-बन्ध, मूलबन्ध, महावेद्ध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनि, बज्रोली, शक्तिचालिनी, तडागी, माण्डवी, शाम्भवी, पञ्चधारणा, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भूजंगिनी इत्यादि पच्चीस मुद्रायें हैं जो योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाली हैं। हठयोग के ग्रन्थों में विभिन्न मुद्राओं एवं बन्धों का विस्तार से वर्णन मिलता है। यहाँ सबसे पहले “बन्ध” पर चर्चा करेंगे। बन्ध मुख्य रूप से तीन हैं, परन्तु इनके संयुक्त होने पर एक बन्ध और हो जाता है। बन्धों का मुख्य कार्य शक्ति के बाह्य प्रवाह को जो व्यर्थ हो रहा है रोककर सूक्ष्म व महत्त्वपूर्ण केन्द्रों की ओर उन्मुख करना है जिससे सुषुप्त शक्ति-केन्द्र क्रियाशील होकर

व्यक्तित्व के विकास में योगदान दे सकें। विभिन्न बन्ध एवं मुद्रायें इस प्रकार हैं-



जालन्धर बन्ध

#### 1. जालन्धर बन्ध -

कंठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चबुकं दृढम् ।  
बंधो जालंधरारत्योयं जरामृत्यु-विनाशकः ।

कंठ का संकोच करके हृदय पर ठोड़ी को दृढ़ता से लगावे, यह जरामृत्यु का नाश करने वाला जालन्धर बन्ध है।

**विधि** - किसी भी ध्यान के आसन में बैठकर दोनों हाथों को घुटनों पर रखें। आँखे बन्द तथा रीढ़ की हड्डी सीधी रहनी चाहिए। गहरी श्वास लेकर कुम्भक करें और कंठ की आन्तरिक मांस-पेशियों को संकोच करके ठुड़ी को छाती से सटा लेना चाहिए, तथा दोनों कंधों को कुछ ऊपर उठायें। जब तक आसानी से कुम्भक की स्थिति में रह सकें रहें, तत्पश्चात् हाथों तथा कंधों को शिथिल करके सिर को ऊपर उठाकर सामान्य स्थिति में आ जायें, धीरे-धीरे लय के साथ श्वास बाहर निकालना चाहिए।

**लाभ-**

1. यह गले के रोगों का नाश करता है।
2. थॉयरॉयड एवं पैराथायरॉयड ग्रनिथों को क्रियाशील बनाकर यह हार्मोन्स के स्राव को सन्तुलित करता है जिससे शरीर की चय-अपचय की क्रिया ठीक रहती है और स्फूर्ति, उत्साह एवं युवावस्था बहुत दिनों तक बनी रहती है।
3. यह विशुद्ध चक्र को जागृत करने में सहायक है।

**2. मूलबन्ध -**

पार्षिभागेन संपीड्य योनिमाकुचयेदगुदम् ।  
अपानमूर्ध्वमाकृष्ट्य मूलबन्धोभिधीयते ॥  
अधोगतिमपानं वा ऊर्ध्वगं कुरुते बलात् ।  
आंकुचनेन तं प्राहुर्मूलबन्धं हि योगिनः ।

एँडी से योनि स्थान (पायु एवं उपस्थ के मध्य भाग) को दबाकर गुदा का आंकुचन-सिकोइ-कर अपानवायु को ऊपर की ओर आकर्षित करें, इसे मूलबन्ध कहते हैं अथवा जिस विधि से अधोगति वाले अपानवायु को बल पूर्वक आंकुचन द्वारा ऊर्ध्वगमी किया जाता है, उसे योगीजन मूलबन्ध कहते हैं।

**विधि-** सिद्धासन में बैठकर दोनों हाथों को घुटनों पर रखकर मेरुदण्ड को सीधी रखें, आँखे बन्द रहें, मन को मूलाधार चक्र पर केन्द्रित करें, अन्तः कुम्भक अथवा बाह्यकुम्भक करके गुदा का आंकुचन कर इसे अधिक से अधिक ऊपर की ओर खींचे। यथासम्भव कुम्भक की स्थिति में रहकर अभ्यास करें, जब कुम्भक की स्थिति में न रह सकें तब गुदा के आंकुचन को शिथिल कर दें।

**लाभ -**

1. इससे बड़ी आँत की निष्क्रियता दूर होती है जिससे कब्ज और अपच दूर होता है।
2. इससे मल द्वार के सभी प्रकार के दोष जैसे बबासीर, भांदर आदि दूर होते हैं।
3. अपान वायु ऊपर खींचने पर जठराग्नि प्रदीप्त होती है जो पाचन शक्ति बढ़ाती है।
4. यह मूलाधार चक्र को जागृत करने में सहायक है।

**विशेष -** इस क्रिया में जालंधर बन्ध भी किया जा सकता है जो अधिक लाभ पहुँचाता है।

**3. उड्डीयानबन्ध-**

बद्धोयेन सुषुम्णायां प्राणस्तूड्डीयते यतः ।  
तस्मादुड्डीयानार्थ्योयं योगिभिः समुदाहृतः ॥  
उड्डीयानं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगाः ।  
उड्डीयानं तदेव स्यात्तत्र बंधोभिधीयते ॥

जिससे बंधा हुआ प्राण ऊर्ध्वमुख होकर सुषुम्णा में होकर पहुँच जाय, उस बन्ध को उड्डीयान कहते हैं। देहावकाश में गतिशील महाखण्ड रूप प्राण जिस बन्ध से सुषुम्णा में उड़ता (गति करता) है उसे उड्डीयानबन्ध कहते हैं।

**विधि** - किसी भी ध्यान के आसन में बैठकर हथेलियों को घुटनों पर जमायें। रेचक क्रिया से पेट के अन्दर की श्वास पूरी तरह बाहर निकालकर बहिष्कुम्भक करें, पेट की हथेलियों का अधिक से अधिक संकोच करके उन्हें मेरुदण्ड से स्पर्श कराने का प्रयत्न करें। बहिष्कुम्भक की स्थिति में आराम से जितनी देर तक रह सकें रहें। जब श्वास को बाहर न रोक सकें तो उदर पेशियों को सामान्य स्थिति में लायें तथा धीरे-धीरे श्वास लें।

**लाभ** -

1. यह अजीर्ण को दूर कर, पाचन क्रिया को बढ़ाता है।
2. इससे दूषित वायु का निष्कासन तथा कृमि रोग का नाश होता है।
3. यह यकृत, गुर्दे, आमाशय आदि पाचन शक्ति को प्रभावित करने वाले अंगों को सक्रिय करता है।
4. यह मणिपूर चक्र को जागृत करने में सहायक है।

**सावधानी** -

1. गर्भवती महिलाओं को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
2. पेट के अल्सर, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि में भी इसके अभ्यास वर्जित है।

**विशेष** - उड्डीयान बन्ध का अभ्यास करने से पूर्व शांख-प्रक्षालन व अग्निसार क्रिया का अभ्यास कर लेना चाहिए जिससे पेट में कब्ज आदि की शिकायत न रहे तथा पेट साफ रहे।

4. **महाबन्ध** - जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध और उड्डीयानबन्ध तीनों को क्रमशः संयुक्त रूप से करने पर “महाबन्ध” बनता है।

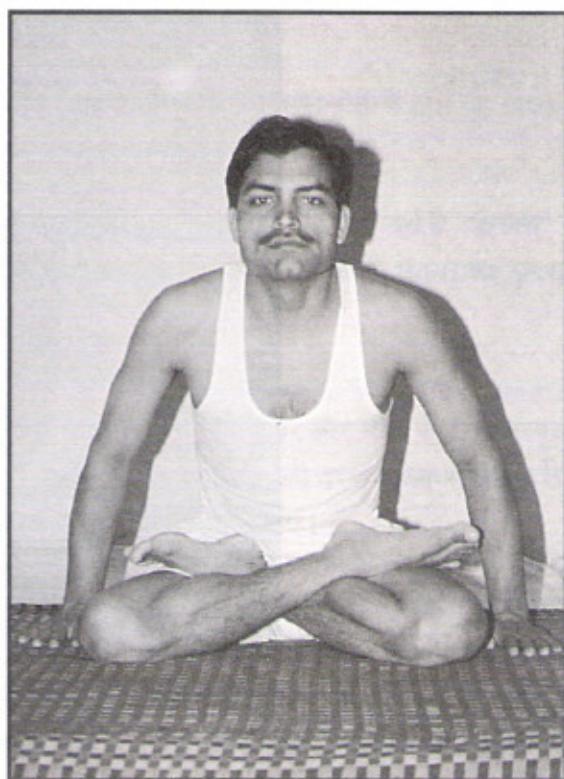
**विधि** - इस बन्ध के लिये पहले ध्यान के किसी भी आसन में बैठकर जालन्धर बन्ध लगाते हैं। तत्पश्चात् क्रमशः मूलबन्ध उड्डीयानबन्ध लगाते हैं। कुम्भक की स्थिति तक इस स्थिति में रहें। अब बन्ध खोलने के लिये सबसे पहले उड्डीयान बन्ध को शिथित करें, फिर मूलबन्ध को और अन्त में जालन्धर बन्ध को, धीरे-धीरे श्वास लीजिए।

**लाभ** -

1. यह हृदय की धड़कन को नियंत्रित करके, मन को शान्त एवं एकाग्र करता है जिससे शरीर के स्नायु सबल होते हैं।
2. यह प्रजनन अंगों एवं उनसे सम्बन्धित स्नायुओं की अनावश्यक उत्तेजना और शिथिलता को दूर करके स्तम्भन की शक्ति बढ़ाता है।
3. यह आँतों की निष्क्रियता को दूर कर जठराग्नि प्रदीप्त करता है जिससे कब्ज और अपच दूर होता है।
4. यह मन व शरीर को ध्यान के लिये तैयार करता है तथा चक्रों के जागरण में भी सहायक है।



महाबंध



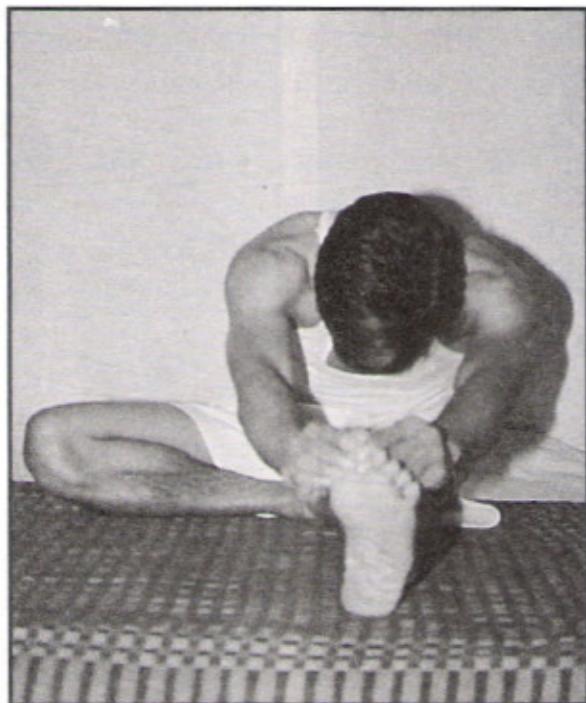
महाबेद्ध

## 5. महावेद्ध -

**विधि:** - दोनों पैर फैलाकर बैठें। दायें पैर की ऐँडी को पायु और उपस्थ के मध्य सीवनी नाड़ी पर रखकर दबायें तथा सामने झुककर दोनों हाथों से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें। श्वास अन्दर लेकर उसके बाद पूरी तरह श्वास बाहर निकालकर सबसे पहले जालन्धर बन्ध, फिर मूलबन्ध और उसके बाद उड़ीयान बन्ध लगायें। दृष्टि नासिका के अग्र भाग पर हो। जब तक सम्भव हो इसका अभ्यास करें।

### लाभ -

1. यह चित्त को एकाग्र कर, मन को ध्यान हेतु तैयार करता है।
2. यह वात तथा उदर-विकारों में लाभप्रद है।



**महामुद्रा**

#### 6. महामुद्रा -

**विधि:** - सर्वप्रथम दोनों पैर सामने फैलाकर बैठें। तत्पश्चात् दायें पैर की एड़ी को पायु और उपस्थ के मध्य सीवनी नाड़ी के नीचे रखें। सामने झुककर दोनों हाथों से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ें। दीर्घ श्वास लेकर जालन्धर-बन्ध तथा मूलबन्ध लगावें। दृष्टि भ्रूमध्य पर रखें। अन्तः कुम्भक की स्थिति में जब तक सम्भव हो रहें। तत्पश्चात् धीरे से श्वास बाहर निकालें। पैर की स्थिति भी बदलकर इसका अभ्यास किया जा सकता है।

#### लाभ -

1. यह चित्त को एकाग्र करके, मन को ध्यान के लिये पृष्ठभूमि बनाता है।
2. यह उदर से सम्बन्धित विकार में लाभ पहुँचाता है।
3. यह प्राण-शक्ति का विकास करके आन्तरिक शक्ति को जागृत करता है।

#### 7. नभोमुद्रा -

**विधि:** - ध्यान के किसी आसन में बैठकर जिह्वा को तालूमूल में लगायें, उज्जायी प्राणायाम के साथ दृष्टि भ्रूमध्य अथवा आकाश की ओर करें।

**लाभ -**

1. यह मुद्रा मन को शान्त एवं स्थिर करती है।
2. इस मुद्रा में एक साथ उज्जायी प्राणायाम, शाम्भवी मुद्रा तथा खेचरी मुद्रा का लाभ प्राप्त होता है तथा यह साधक को चेतना की उच्च स्थिति में ले जाने में सहायक है।
8. खेचरी मुद्रा - खेचरी शब्द “खे” और “चरी” दो शब्दों के मेल से बना है जिसमें “खे” का अर्थ है “आकाश” तथा “चरी” का अर्थ है “भ्रमण” करने वाला। अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल शरीर के बीच मन की चेतना का भ्रमण आकाश में भ्रमण है, इसलिये इसे “खेचरी” मुद्रा कहते हैं।

**विधि -** खेचरी मुद्रा का अभ्यास दो प्रकार से किया जा सकता है।

1. प्रथम विधि सरल है। इसमें ध्यान के किसी आसन में बैठकर मुँह बन्द रखें तथा ऊपर और नीचे के दाँत परस्पर सटे हों, आंखे बन्द हों। तत्पश्चात् जिह्वा के अग्र भाग को ऊपर उठाते हुये पीछे तालुमूल की तरफ अधिक से अधिक ले जाकर तालुमूल से स्पर्श करवाने का अभ्यास करें। इस किया में श्वास सामान्य रहनी चाहिए।
2. दूसरी विधि कुछ कठिन है। किसी योग योगचार्य के मार्ग-दर्शन में ही इसका अभ्यास किया जा सकता है। इस विधि में जिह्वा को लम्बी करने के लिये इस के छेदन, दोहन और कर्षण की क्रिया की जाती है। छेदन-क्रिया में जिह्वा के निम्न मूल को काटा जाता है। प्रत्येक सप्ताह बाल के बराबर स्फटिक अथवा धारदार शुद्ध वस्तु से काटा जाता है। लगभग ६ माह के अभ्यास में जिह्वा का निम्न-मूल से बन्धन कट जायेगा। इसके बाद जिह्वा के अग्र भाग को वस्त्र से लपेटकर धीरे-धीरे दोहन करें और क्रमशः जिह्वा को नासिका के अग्र भाग तक, फिर नासिका के मध्य भाग तथा फिर भ्रूमध्य तक लम्बी करने का अभ्यास करें इस प्रकार जिह्वा के बढ़ने पर तालुमूल में धीरे-धीरे इसे, प्रविष्ट करवायें। फिर कपाल-रन्ध्र में जिह्वा को ऊपर की ओर उलटी करके ले जाना चाहिए। दृष्टि भ्रूमध्य में रहे।

**लाभ -**

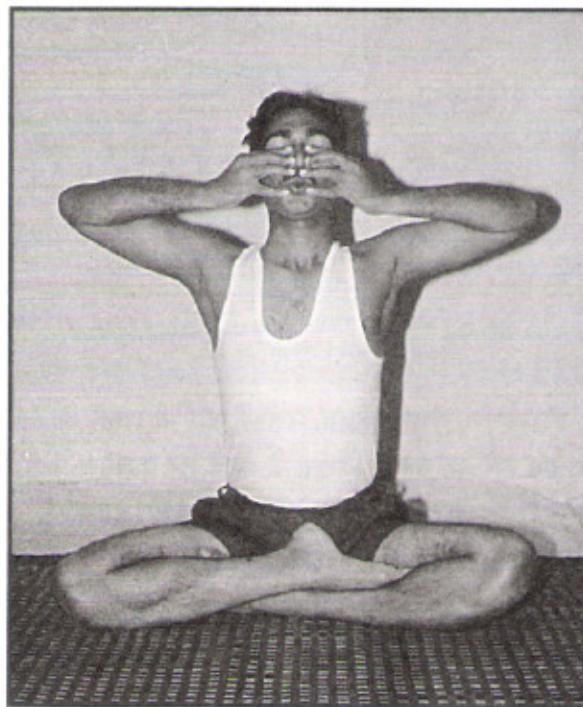
1. खेचरी का अभ्यास करने वाले साधक को मूर्च्छा, क्षुधा, तृष्णा, आलस्य आदि नहीं सताते हैं।
2. इससे शरीर की अनावश्यक गर्भी दूर होती है और शरीर के तन्तुओं के क्षय होने की गति रुकती है।
3. इस क्रिया के अभ्यास से श्वास-प्रश्वास की गति दीर्घ होती है जिससे मन स्वतः शान्त और स्थिर होता है।
9. विपरीतकरणी मुद्रा - यह मुद्रा इस सिद्धान्त पर आधारित है कि प्रत्येक मनुष्य के नाभिमूल में सूर्यनाड़ी और तालुमूल में चन्द्रनाड़ी का स्थान है। सहस्रार से जब चन्द्रामृत का प्रवाह होता है तब सामान्य रूप से नाभि में स्थित सूर्य के तेज से वह नष्ट हो जाता है। यदि सहस्रार से निकलने वाला चन्द्रामृत तालुमूल में सुरक्षित रखा जा सके तो शरीर अमरता को प्राप्त होता है।

**विधि-** पहले दोनों हाथों को परस्पर बाँध कर सिर को उनके बीच कर भूमि में रखकर शीर्षसिन की स्थिति में आ जायें पैर ऊपर की ओर सीधे रहें। फिर कुम्भक के द्वारा वायु को रोकने का अभ्यास करें। प्रारम्भ में कुछ क्षणों के लिये करें, धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ायें।

लाभ- यह-

1. शरीर के ताप को सन्तुलित रखकर सभी प्रकार के आधि-व्याधि का नाश करती है।
2. जठरापिन प्रदीप्त करती है।
3. स्मरण शक्ति को बढ़ाने में सहायक है।
4. शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक है।
5. सुषुम्णा का प्रवाह मस्तिष्क की ओर करती है।

सावधानी- उच्च रक्त चाप तथा, हृदय के रोगी इसका अभ्यास न करें।



योनि मुद्रा

**10. योनिमुद्रा-** सिद्धासन अथवा ध्यान के किसी आसन में बैठकर दोनों हाथों के अँगूठे से कानों को, दोनों हाथों की तर्जनी से नेत्रों को, मध्यमा से मुख को और अनामिका से नासिका को बन्द करें। काकी मुद्रा की स्थिति में मुह से प्राण वायु लेकर श्वास को भीतर रोकते हुए बिन्दु चक्र पर मन को एकाग्र करने का प्रयास करें। आराम दायक स्थिति तक श्वास को रोकने के पश्चात् नासिका से अँगुलियों को हटा लें। रेचक क्रिया द्वारा श्वास निकाल लें। अन्य अँगुलियां अपने स्थानों पर यथावत् रहेंगी पुनः श्वास लेकर इसका अभ्यास करें। यही योनिमुद्रा है। चूँकी इस मुद्रा में साधक की स्थिति इन्द्रिय जन्य क्रिया-कलापों से रहित-जिस तरह बच्चा गर्भ अर्थात् योनि में रहता है उस तरह-होने के कारण इस मुद्रा को योनिमुद्रा कहते हैं।

**लाभ-**

1. इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर में नाद प्रकट होता है।
2. यह मानसिक तनाव में राहत पहुँचाती है।
3. यह नेत्र, नाक, कान के रोगों में राहत पहुँचाती है।
4. यह चित्त को एकाग्र कर ध्यान के लिये मन को तैयार करती है।

**11. वज्रोली-मुद्रा-** वज्र नाड़ी जो कि यैन-ग्रन्थि से जुड़ी है से सम्बन्धित मुद्रा होने के कारण इसे वज्रोली मुद्रा कहते हैं।

**विधि-** इस मुद्रा का अभ्यास दो तरह से किया जा सकता है-

1. सिद्धासन अथवा वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों को घुटनों पर रखें। कुम्भक की स्थिति में निम्न उदर प्रदेश के, पायु और उपस्थि से सम्बन्धित भाग का ऊपर की ओर आकुंचन करें। फिर श्वास छोड़ते हुये निम्न उदर प्रदेश को शिथिल करके बहिष्कुम्भक की स्थिति में भी निम्न उदर प्रदेश का आकुंचन करें। इस क्रिया को कुम्भक की स्थिति में बार-बार दोहरायें।
2. इस विधि का अभ्यास किसी योग्य योगाचार्य के निर्देशन में ही करना चाहिए। इस क्रिया में मूत्रमार्ग में पहले कैथेटर नं०-४ अथवा ५ को डालकर प्रतिदिन १ इंच अन्दर की ओर डालें। जब कैथेटर १०-१२ इंच अन्दर जाने लगे तो चाँदी अथवा काँच की लगभग १५ इंच वाली नली को मूत्रमार्ग से धीरे-धीरे प्रवेश कराकर अभ्यास करें। जब नली १०-१२ इंच अन्दर चली जाय तो नली के मार्ग से जल को ऊपर खींचने का अभ्यास करें। जब यह अभ्यास संधि जाय तो दूध से इसका अभ्यास करें। जब दूध से भी अभ्यास सिद्ध हो जाय तब मधु और अन्त में पारद से अभ्यास किया जाता है। जब अभ्यास सिद्ध हो जाय तब बिना नली के भी उपर्युक्त विधि के अनुसार अभ्यास किया जा सकता है।

**लाभ**

1. यह ब्रह्मचर्य पालन के लिये उपयोगी क्रिया है।
2. यह पायु और उपस्थि से सम्बन्धित सभी प्रकार के रोगों में लाभ पहुँचाती है।
3. इससे स्नायु नियंत्रण और स्थिरता प्राप्त होती है जिससे ध्यान आदि योग के उच्च साधन के लिये भूमिका तैयार होती है।

**सावधानी -** सामान्य वज्रोली-मुद्रा में अभ्यास सरल होने के कारण कोई खतरा नहीं है, परन्तु दूसरी विधि योग्य व्यक्ति के निर्देशन में ही करनी चाहिए।

12. **शक्तिचालिनी मुद्रा-** सिद्धासन में बैठकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों के ऊपर रखें। श्वास के द्वारा प्राण वायु अन्दर लें तथा पायु और उपस्थि का, निम्न उदर प्रदेश का ऊपर की ओर आकुंचन करके उड़ीयान बन्ध लगायें। निम्न उदर प्रदेश के आकुंचन और शिथिलन से सुषुम्णा का प्रवाह प्रारम्भ होता है जो कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में सहायक है।

### लाभ-

1. यह आन्तरिक शक्ति के जागरण में सहायक है।
2. यह बवासीर, गुदा से सम्बन्धित विकारों में उपयोगी है।



**तड़ागीमुद्रा**

**13. तड़ागीमुद्रा-** पश्चिमोत्तान आसन की स्थिति में दोनों पैरों के बीच कुछ दूरी बनाकर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगुठों को पकड़ें। दीर्घ पूरक करके पेट की स्नायुओं को बाहर की ओर फैलायें। जब तक सम्भव हो अन्तः कुम्भक लगायें, तदुपरान्त रेचक कीजिये।

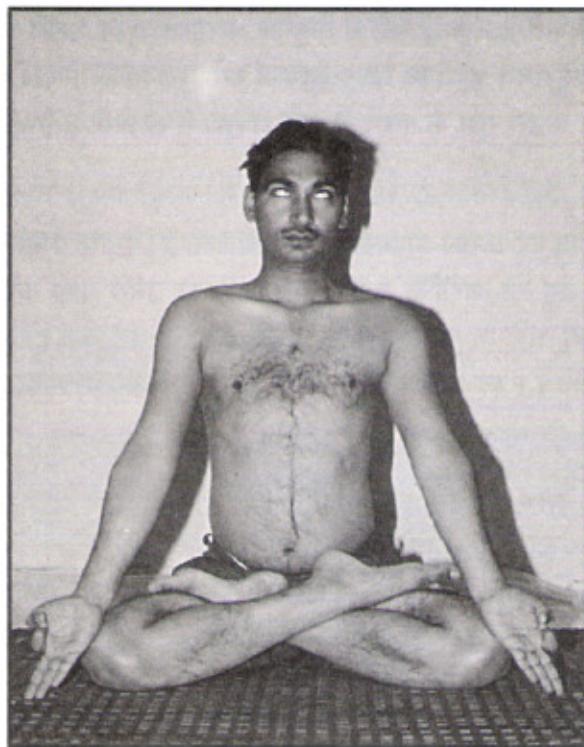
### लाभ-

1. यह उदर से सम्बन्धित विकारों को दूर करता है और पाचन-शक्ति को बढ़ाती है।
2. यह शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाकर, कार्यक्षमता हो बढ़ाने में सहायक है।

**14. माण्डूकीमुद्रा-** ध्यान के किसी आसन में बैठकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें अथवा चिन्मुद्रा की स्थिति में रखें, मुह को बन्द करें। मुंह को बन्द करके जिह्वा को मुंह के अन्दर चारों ओर घुमाकर चिह्वा को तालूमूल में लगाकर चन्द्रामृत का पान हो रहा है ऐसा आभास करें।

### लाभ

1. इससे लार ग्रन्थि सक्रिय होती है जो भोजन के पचाने में सहायक है।
2. यह स्वास्थ्य उत्तम करने का साधन है।
3. इससे चेहरे की झुर्रियाँ दूर होती हैं।



**शाम्भवीमुद्रा**

**15. शाम्भवीमुद्रा-** ध्यान के किसी आसन में बैठकर मेरुदण्ड को सीधा करें। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर ज्ञानमुद्रा में रहें। श्वास सामान्य रहे। दोनों नेत्रों को दोनों भौहों के मध्य स्थान में स्थिर रखने का अभ्यास करें। पहली बार ही आँखों पर ज्यादा तनाव न दें, धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ायें, आँखें थकने पर बन्द कर दें। फिर अभ्यास करें।

#### लाभ

1. यह मानसिक तनाव को दूर कर मन को एकाग्र करने में सहायक है
2. यह स्मरण-शक्ति बढ़ाने में सहायक है।
3. इससे नेत्रों के विकार दूर होकर, नेत्रों में सम्मोहन की शक्ति प्राप्त होती है।

**16. पञ्चधारणामुद्रा -** ध्येय विषय पर चित्त की वृत्ति को एकाग्र करना “धारणा” कहलाती है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंच तत्वों पर धारणा पञ्चधारणा कहलाती है। धारणा अष्टांग योग का छठवां अंग है परन्तु हठयोग में मुद्राओं में ही “धारणा” का वर्णन पञ्चधारणा के रूप में प्राप्त होता है। ये पञ्चधारणाएँ इस प्रकार हैं- पार्थिवी, आम्भसी, आग्नेयी, वायवीय और आकाशी।

1. **पार्थिवीधारणा-** पृथ्वी तत्त्व पर धारणा पार्थिवीधारणा कहलाती है। पृथ्वी के आदि रचयिता ब्रह्मा जी हैं। इस

तत्त्व का स्थान पाँव से जानु पर्यन्त है। पृथ्वी तत्त्व में वायु को आरोपित करके उसमें बीज 'लं' को युक्त करें और स्वर्ण के समान चतुर्भुज एवं चतुरानन ब्रह्मा का ध्यान हृदय में कर कुम्भक की स्थिति को बढ़ाने का प्रयास करें। दो घंटे पर्यन्त कुम्भक की स्थिति में इस मुद्रा के करने से पार्थिवी मुद्रा सिद्ध होती है तथा साधक पृथ्वी तत्त्व पर विजय प्राप्त करता है।

**2. आम्भसीधारणा-** जलतत्त्व पर धारणा आम्भसी धारणा कहलाती है। इस तत्त्व का स्थान जानु से गुदा स्थान तक माना जाता है। जलतत्त्व में वायु को आरोपित करके बीज 'वं' को उसमें युक्त करें तथा पीताम्बर एवं कौस्तुभ मालाधारी चतुर्भुज भगवान श्री नारायण का पाँच घड़ी पर्यन्त अर्थात् 2 घंटे तक हृदय में ध्यान करने से आम्भसी धारणा नाम की मुद्रा सिद्ध होती है। इस धारणा की सिद्धि से शरीर में किसी भी प्रकार के विष का प्रभाव नहीं पड़ता है।

**3. आग्नेयी या वैश्वानरी-धारणा-** अग्नितत्त्व पर धारणा "आग्नेयी-धारणा" कहलाती है। अग्नि का स्थान नाभि, आकृति त्रिकोण, वर्ण इन्द्रगोप घोड़े के समान लाल और बीज 'रं' है। इसके देवता त्रिनेत्र भगवान रुद्र हैं। गुदा से हृदय तक अग्नि का स्थान है। अग्नि तत्त्व में वायु को आरोपित कर बीज 'रं' को उसमें युक्त कर त्रिनेत्र रुद्र का ध्यान पाँच घड़ी अर्थात् 2 घंटे तक करने से अग्नि तत्त्व पर साधक विजय प्राप्त करता है। अर्थात् अग्नि से उसे कोई हानि नहीं होती है।

**4. वायवीयधारणा-** वायु तत्त्व पर धारणा "वायवीयधारणा" कहलाती है। वायु का स्थान हृदय से भृकुटियों तक माना गया है। बीज 'यं', देवता ईश्वर और सत्त्वगुण से युक्त है। योगबल से इसका आविर्भाव होने पर एकाग्र चित्त से कुम्भक द्वारा पाँच घड़ी अर्थात् 2 घंटे तक प्राण-वायु का ध्यान करें। इस मुद्रा के सिद्ध होने पर साधक को वायु गमन की शक्ति प्राप्त होती है और साधक वायु से नहीं मरता।

**5. आकाशीधारणा-** आकाशतत्त्व पर धारणा "आकाशीधारणा" कहताती है। आकाशतत्त्व का स्थान भृकुटी से मूद्धन्त पर्यन्त माना गया है। आकाशतत्त्व में वायु को आरोपित कर बीज 'हं' को युक्त करके भौहों के मध्य दो घंटा कुम्भक की स्थिति में भगवान शंकर का ध्यान करें। इस मुद्रा के सिद्ध होने पर साधक को आकाश गमन की शक्ति प्राप्त होती है।

## 17. आश्विनी मुद्रा-

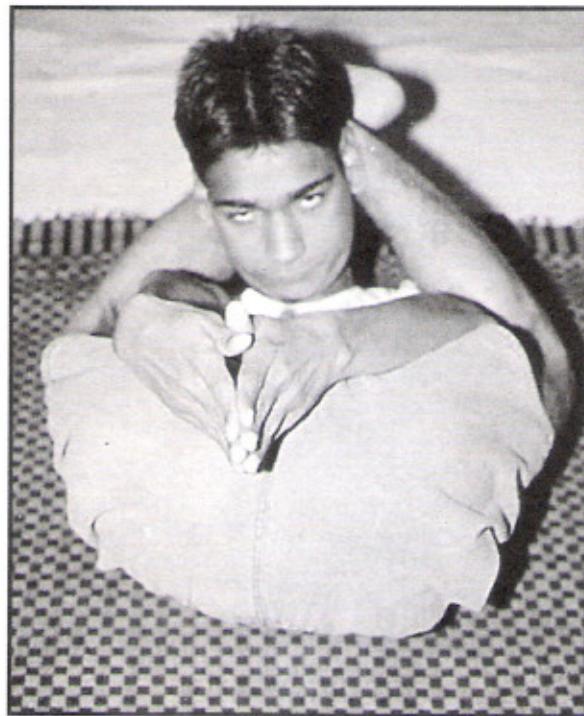
आकुञ्चयेद् गुदाद्वारं	प्रसारयेत् पुनः पुनः ।
साभवेदाश्विनीमुद्रा	शक्तिप्रबोधकारणी ।
आश्विनीपरमामुद्रा	गुह्यरोगविनाशिनी ।
बलपुष्टिकरीचैव	अकालमरणाहरेत् ॥

गुदा-द्वार का बार-बार संकोच और प्रसार करें। अश्वों द्वारा ऐसी क्रिया की जाती है इसलिए यह आशिनीमुद्रा कहलाती है। इससे कुण्डलिनी का जागरण होता है। यह मुद्रा गुह्य रोगों को नष्ट करने वाली, शारीरिक शक्ति को बढ़ाने वाली तथा अकाल मृत्यु को हरण करने वाली है।

**विधि-** ध्यान के किसी भी आसन अथवा वज्रासन में बैठकर गुदाद्वार की मांस-पेशियों का आकुंचन एवं प्रसारण करें। इवास समान रहनी चाहिए। ध्यान मूलाधर चक्र पर केन्द्रित करें।

**लाभ-**

1. यह निम्न उदर प्रदेश से सम्बन्धित सभी विकारों में लाभ पहुँचाती है।
2. यह ब्रह्मचर्य को स्थिर करने में सहायक है।



**पाशिनीमुद्रा**

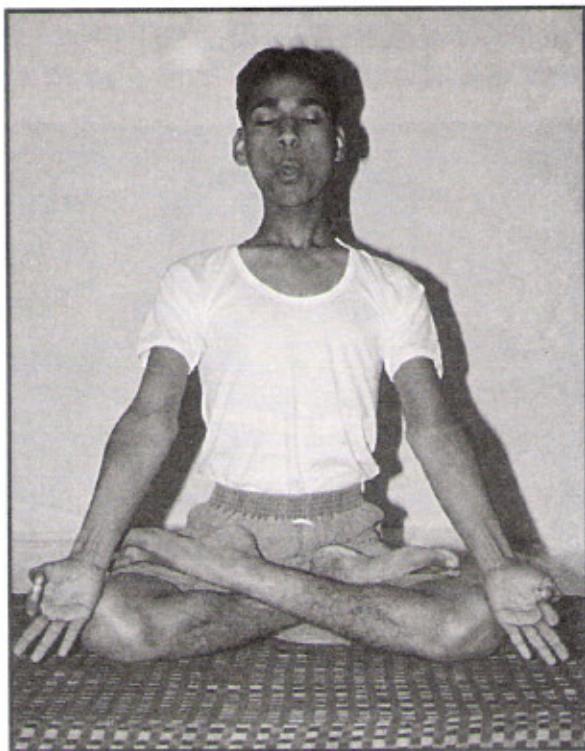
**18 पाशिनीमुद्रा-**

कण्ठपृष्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवद् दृढ़बन्धनम् ।  
सा एव पाशिनीमुद्रा शक्ति प्रबोधकारिणी ॥

दोनों पाँवों को कण्ठ के पीछे की ओर ले जाकर उन्हें परस्पर मिलाकर पाश के समान दृढ़ता से बांध लें। यह शक्ति को जाग्रत करने वाली पाशिनी-मुद्रा है।

**लाभ-**

1. रक्त चिकार को दूर करने में सहायक है।
2. मेरुदण्ड को लचीला बनाकर सक्रिय रखती है।
3. मन की एकाग्रता में सहायक है।



**काकीमुद्रा**

**19 काकीमुद्रा-**

काकचञ्चुवदास्येन पिवेद् वायुं शनैः शनैः ।  
काकी मुद्रा भवेदेषा सर्वरोग विनाशिनी ॥

मुख को कौवे की चोंच के समान करके उसके द्वारा शनैः शनैः वायु पान करें। यह सभी रोगों को नष्ट करने वाली काकीमुद्रा है।

**विधि** - ध्यान के किसी आसन अथवा वज्रासन में बैठकर मुँह को कौवे की चोंच की तरह गोल करते हुये मुँह से श्वास लें और धीरे-धीरे नाक से निकालें। द्वष्टि नासिकाग्र पर रहे।

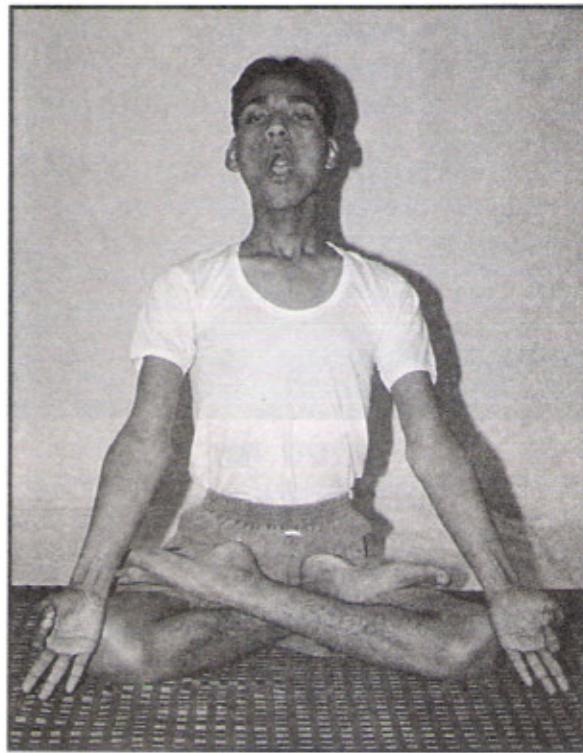
**लाभ-**

1. यह पाचन-शक्ति को बढ़ाने में सहायक है।
2. यह मुँह और गले सम्बन्धित विकारों में लाभ पहुँचाती है।

## 20. मातंगिनीमुद्रा -

**विधि** - हाथियों की तरह इस मुद्रा में कण्ठ तक जल में खड़े होकर नासिका से जल खींचकर मुख से बाहर निकालें। प्रारम्भ में कठनाई होगी। इसलिये जलनेति का अच्छा अभ्यास होने के बाद ही इस मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए।

**लाभ** - मन एवं शरीर को स्वस्थ बनाने में सहायक है।

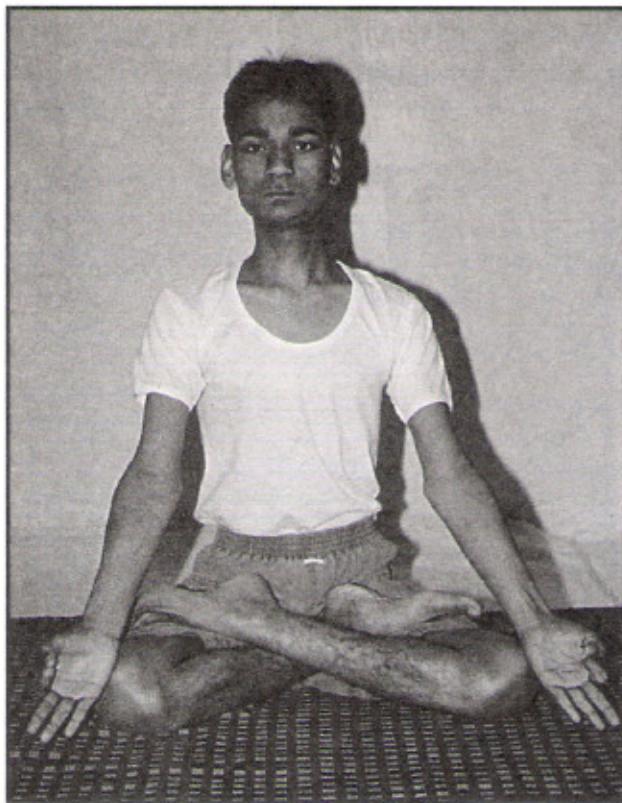


**भुजंगिनीमुद्रा**

**21. भुजंगिनीमुद्रा** - ध्यान के किसी आसन अथवा वज्रासन में बैठकर मुँह खोलकर सर्प के समान कण्ठ से वायु का पान करें। पेट भर जाने पर डकार के साथ वायु बाहर निकाल दें।

लाभः -

1. यह सभी प्रकार के उदर रोगों को नष्ट करती है।
2. यह मुङ्ह की लार ग्रन्थियों को सक्रिय बनाती है।



अगोचरी मुद्रा

## 22. अगोचरीमुद्रा -

**विधि** - ध्यान के किसी भी आसन में बैठकर कुम्भक की स्थिति में दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर केन्द्रित करने की क्रिया अगोचरी मुद्रा है।

**लाभ** - यह मन की चंचल वृत्तियों को एकाग्र करने में सहायक है।

23. भूचरीमुद्रा - ध्यान के किसी आसन में बैठकर नासिका से लगभग 4 अंगुल दूरी पर शून्य आकाश में दृष्टि को केन्द्रित करने का प्रयास करें। यही भूचरीमुद्रा है।

लाभ - यह मन को एकाग्र करती है।

उपर्युक्त विशिष्ट मुद्राओं के अतिरिक्त कुछ हस्त मुद्रायें भी हैं जिनका योग-साधना में अपना विशिष्ट स्थान है। इन मुद्राओं का अभ्यास कहीं भी किसी भी परिस्थिति में करके मनोकार्यिक दृष्टि से स्वस्थ एवं नीरोग बना जा सकता है। गुरु गोरक्षनाथ जी देह-पिण्ड अर्थात् शरीर के सम्बन्ध में कहते हैं कि “पिण्ड माहिं ब्रह्माण्ड समाया” अर्थात् जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में है वह इस मानव शरीर में मौजूद हैं। आवश्यकता है उसे यौगिक क्रियाओं द्वारा प्राप्त करने की। यह ब्रह्माण्ड पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश जैसे पंच तत्त्वों के मेल से बना है उसी प्रकार हमारा शरीर भी इन्हीं पंच तत्त्वों के मेल से बना है। शरीर में किसी एक तत्त्व की कमी होने अथवा इसमें असन्तुलन उत्पन्न होने से शरीर रोग ग्रस्त हो जाता है। आजकल तमाम प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों का विकास होने से शरीर में जिस तरह की कमी होती है चिकित्सा से उस तत्त्व की कमी को पूरा किया जाता है, जिससे रोग से मुक्ति मिलती है। लेकिन कभी-कभी रोग की सही पहचान न होने पर गलत चिकित्सा का दुष्परिणाम भी हमें भुगतना पड़ता है। योगिक क्रियाओं के माध्यम से इस प्रकार के दुष्परिणामों से तो बचा ही जा सकता है साथ-साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में भी हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। हमारे हाथ की पांचों अङ्गुलियाँ पंच तत्त्व की प्रतीक हैं। हमारा अंगुष्ठ अग्नि तत्त्व का, तर्जनी वायु तत्त्व का, मध्यमा-आकाश तत्त्व का, अनामिका-पृथ्वी तत्त्व का तथा कनिष्ठा-जल तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है। इन्हें आपस में किसी विशिष्ट उद्देश्य और रूप से मिलाने पर तत्त्व विशेष की कमी को तो दूर किया ही जा सकता है साथ ही साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में भी सहयोग मिलता है। कुछ उपयोगी हस्त मुद्रायें इस प्रकार हैं-

1. **ज्ञान-मुद्रा** - अंगुष्ठ जो अग्नि तत्त्व का प्रतिनिधित्व करता है और तर्जनी जो वायु तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है इन दोनों के अग्र भागों को मिलाने पर जो मुद्रा बनती है उसे ज्ञान-मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा के अभ्यास में शेष तीनों अङ्गुलियां सीधी रहें।

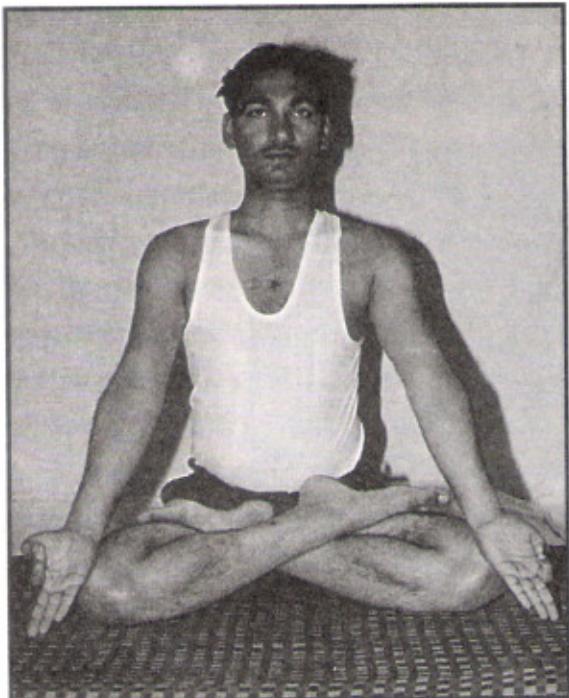
**लाभ:-**

1. इस मुद्रा में अग्नि और वायु तत्त्व के मिलने से शरीर में प्राण शक्ति का संचार होता है तथा तेजस्विता बढ़ती है।  
2. इस मुद्रा के अभ्यास से स्मरण शक्ति बढ़ाई जा सकती है।

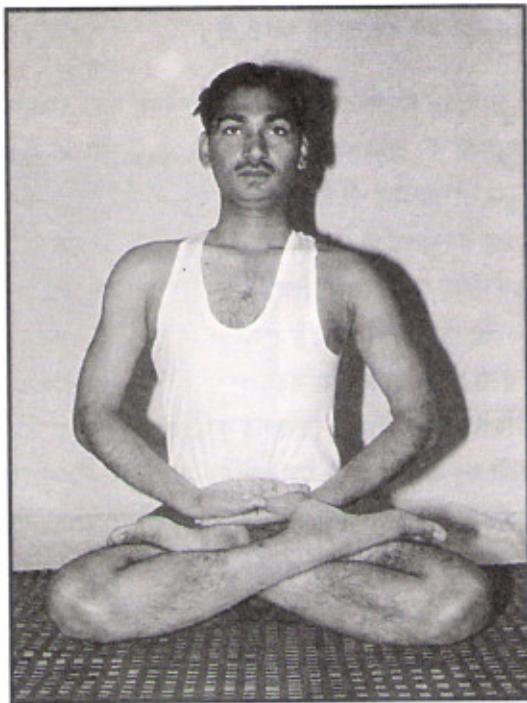
2. **चिन्मुद्रा** - ध्यान के किसी भी आसन में बैठकर दोनों घुटनों पर दोनों हथेलियों को ऊपर की ओर रखें अथवा नाभि के कुछ नीचे बायें हथेली पर दायीं को रखें। यहीं चिन्मुद्रा है।

**लाभ:-**

1. यह मन को शान्त और स्थिर रखने में सहायक है।  
2. सम्पूर्ण शरीर में प्राण के प्रवाह को बनाने में सहायक है।



ज्ञानमुद्रा



चिन्मुद्रा

3. **वायुमुद्रा** - तर्जनी जो वायु का प्रतिनिधित्व करती है को अंगुष्ठ की जड़ में लगाकर अंगुष्ठ से हल्का दबाव देना चाहिये, शेष अँगुलियाँ सीधी रहें। इस प्रकार जो हस्त मुद्रा बनती है उसे वायुमुद्रा कहते हैं।

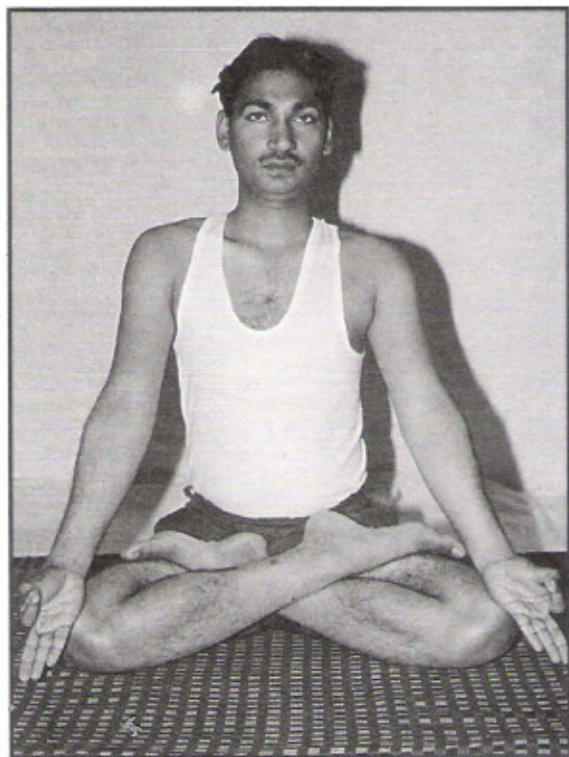
**लाभ -**

1. यह मुद्रा वायु तत्त्व की कमी को दूर करती है।
2. समस्त वायु विकारों जैसे-गठिया, शरीर कम्पन में लाभ पहुंचाती है।

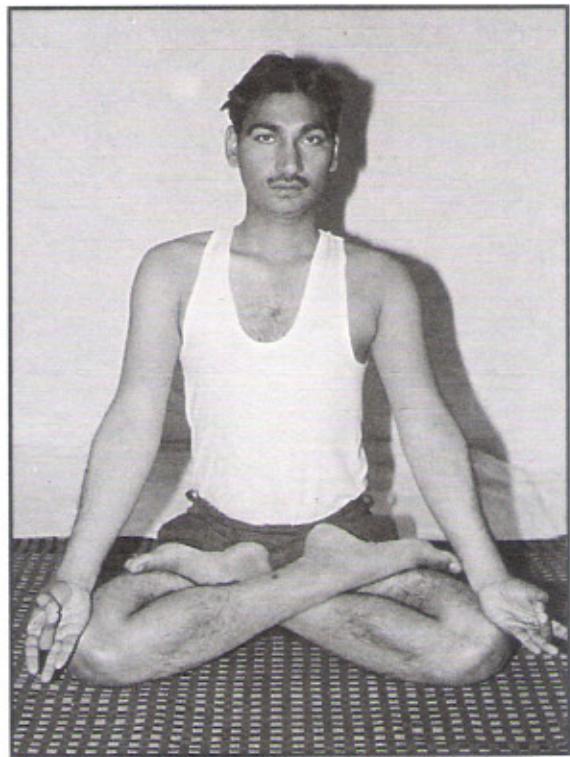
4. **शून्यमुद्रा** - मध्यमा जो आकाश तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है को अंगुष्ठ की गढ़ी पर लगाकर अंगुष्ठ से हल्का दबाव डालें, शेष तीनों अँगुलियाँ सीधी रहें। इस प्रकार जो मुद्रा बनती है उसे शून्य मुद्रा कहते हैं।

**लाभ -**

1. इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर में आकाश तत्त्व की कमी दूर होती है।
2. कान के रोग जैसे-कान बहना, कम सुनाई देना, दर्द होना आदि विकार दूर होते हैं।



वायुमुद्रा



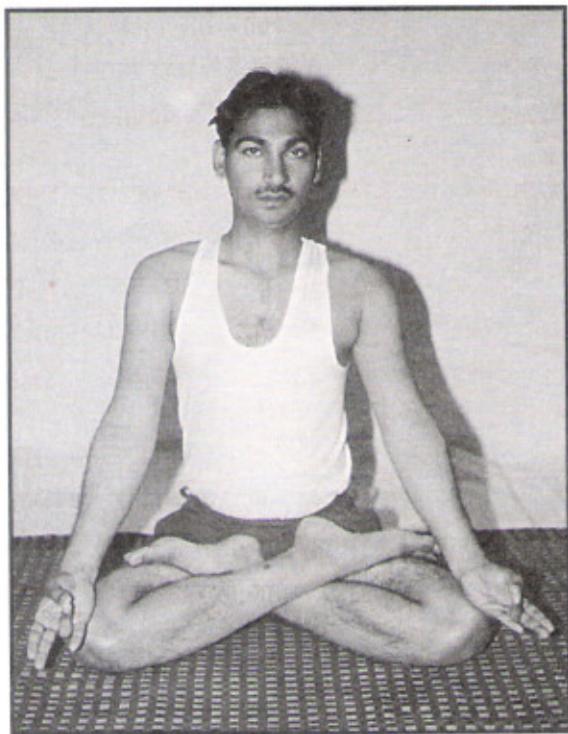
शून्यमुद्रा

5. पृथ्वी-मुद्रा - अनामिका जो पृथ्वी तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है को अंगुष्ठ के अग्र भाग से मिलाने पर तथा शेष तीनों अँगुलियों को सीधा रखने से जो हस्त-मुद्रा बनती है उसे पृथ्वी-मुद्रा कहते हैं।

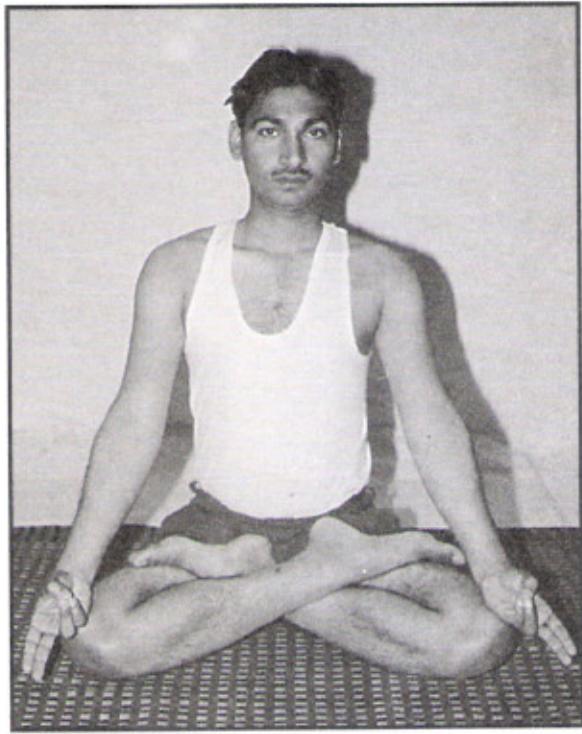
**लाभ** - इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर में पृथ्वी तत्त्व की कमी दूर होती है, इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से शरीर की दुर्बलता व कमजोरी दूर की जा सकती है।

6. प्राण-मुद्रा - अंगुष्ठ, अनामिका तथा कनिष्ठा इन तीनों अँगुलियों के अग्रभागों को मिलाने पर जो हस्त-मुद्रा बनती है उसे प्राण-मुद्रा कहते हैं। इस अभ्यास में शेष अँगुलियाँ सीधे रहे।

**लाभ** - इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर में प्राण तत्त्व की कमी को दूर किया जा सकता है और शरीर की शक्तिहीनता को दूर करके नई शक्ति का संचार किया जा सकता है।



पृथ्वीमुद्रा



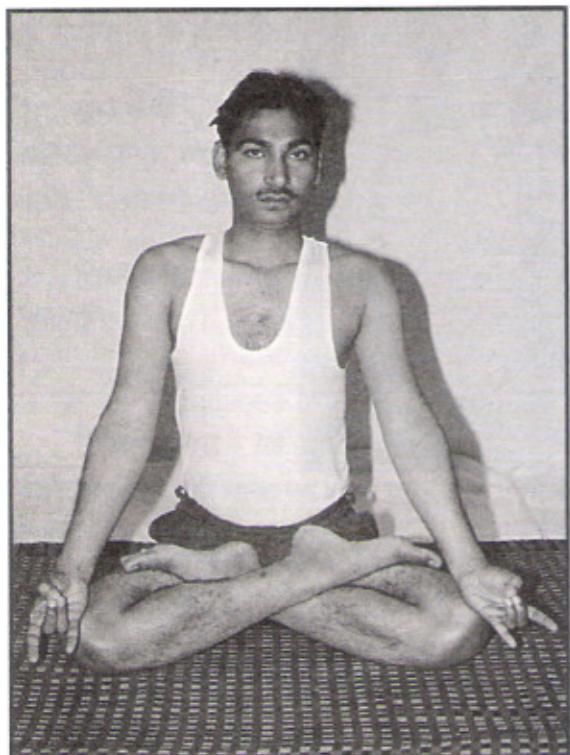
प्राणमुद्रा

7. अपान-मुद्रा - अंगुष्ठ के साथ मध्यमा और अनामिका के अग्रभाग को मिलाने पर तथा शेष दोनों अंगुलियों को सीधा रखने पर जो मुद्रा बनती है उसे अपान-मुद्रा कहते हैं।

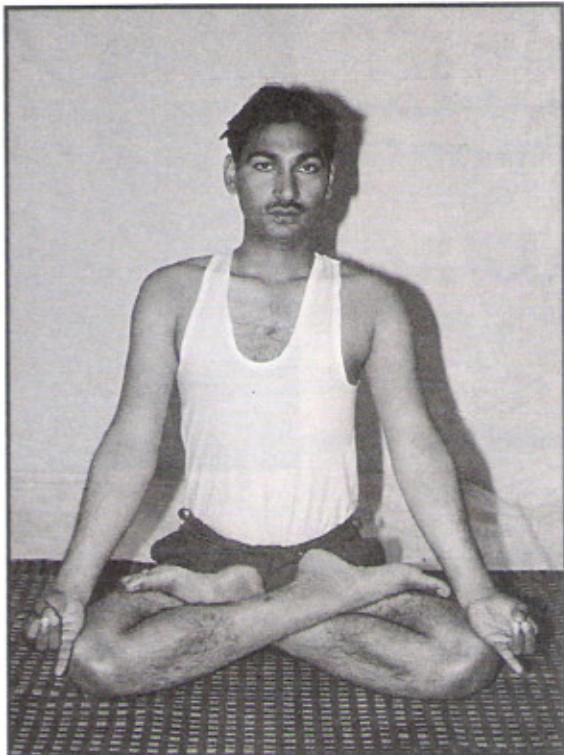
लाभ - इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से शरीर के विजातीय द्रव्य बाहर निकलते हैं और शरीर मल रहित बनता है।

8. अपानवायु-मुद्रा - वायु-मुद्रा तथा अपान-मुद्रा के संयुक्त होने से यह मुद्रा बनती है। तर्जनी को अंगुष्ठ की जड़ में लगाकर हल्का दबाव डालें तथा मध्यमा और अनामिका के अग्रभाग को अंगुष्ठ के अग्रभाग से मिलावें। यही अपान-वायु मुद्रा है।

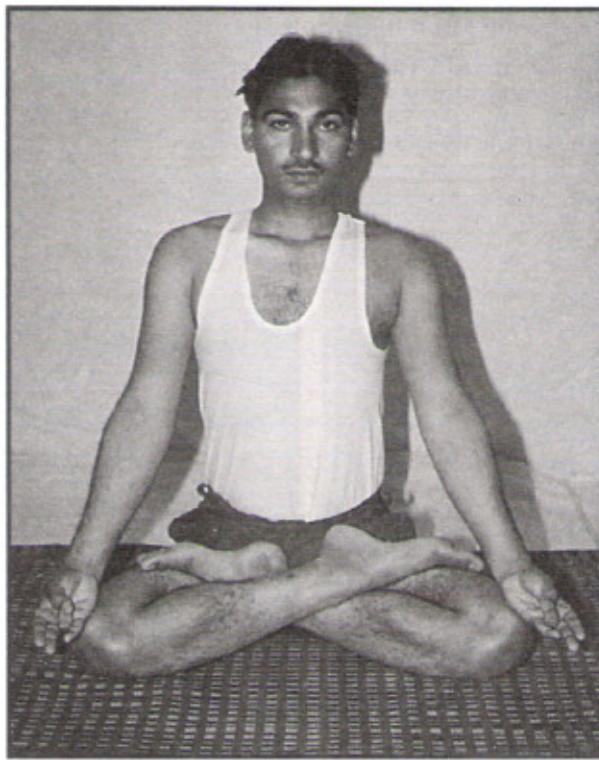
लाभ - दो मुद्राओं के मेल से बनी यह मुद्रा शरीर में स्थिन विभिन्न ग्रन्थियों को जाग्रत करती है। इस मुद्रा का नियमित अभ्यास हृदय रोग से बचाव कर सकता है।



अपानमुद्रा



अपानवायु-मुद्रा



सूर्यमुद्रा

9. सूर्यमुद्रा - अनामिका अँगुली को मोड़कर उसके बीच के जोड़ों के ऊपर वाले भाग को अँगूठे से दबायें। अन्य अँगुलियाँ सीधी रहनी चाहिये। यही सूर्यमुद्रा है।

लाभ -

1. यह मन को स्थिर रखने में सहायक है।
2. यह शरीर की स्थूलता को कम करने में सहायक है।

## प्रत्याहार

हठयोग-साधना में योग-सिद्धि के सप्त-साधनों में प्रत्याहार का चौथा स्थान है। मन की अन्तर्मुखी वृत्ति को अन्तर्मुखी करने के साधन को प्रत्याहार कहते हैं। मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण मन ही है (मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः) मन (चित्त) की स्थिति हमेशा एक जैसी नहीं रहती वरन् देश, काल और परिस्थिति तथा व्यक्ति की प्रकृति का प्रभाव भी मन की स्थिति पर पड़ता है। योग-साधना द्वारा नियमित अभ्यास से मनः स्थिति को साधना में उच्चतम स्थिति में ले जाया जा सकता है। मन की पाँच विभिन्न अवस्थायें इस प्रकार हैं-

1. **मूढावस्था** - यह मन की वह स्थिति है जब शरीर में तमोगुण प्रधान होता है जिससे मनोकायिक रूप से व्यक्ति आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि के प्रभाव में रहता है जिसका प्रभाव मन की क्रियाशीलता पर पड़ता है। इस अवस्था में व्यक्ति की सोचने-समझने एवं निर्णय लेने की शक्ति नहीं के बराबर होती है।
2. **क्षिप्तावस्था** - यह मन की वह स्थिति है जब शरीर में रजो गुण प्रधान होता है जिसमें मनोकायिक रूप से व्यक्ति अशान्त एवं अस्थिर रहता है। मन के अशान्त एवं अस्थिर रहने से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार प्रबल हो जाते हैं।
3. **विक्षिप्तावस्था** - यह मन की वह स्थिति है जो तमोगुण, रजोगुण एवं सत्त्वगुण के मध्य रहती है। इस स्थिति में व्यक्ति का मन कभी शान्त एवं स्थिर रहता है तो कभी अशान्त एवं अस्थिर हो जाता है।
4. **एकाग्रता** - यह मन की वह स्थिति है जो सत्त्वगुण प्रधान होती है। इस स्थिति में मन एकाग्र एवं शान्त रहता है। व्यक्ति प्रबल धार्मिक बनता है और मानसिक चेतना सक्रिय होकर अन्तर्मुखी होती है।
5. **निरुद्धता** - यह मन की वह स्थिति है जिसमें मन की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। मन एवं प्राण शान्त एवं सौम्य हो जाते हैं। योग-साधना की उच्चतम स्थिति ही निरुद्धता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर ये छः विकार ही मन की चंचलता के प्रमुख कारण हैं। यदि मन को इनकी ओर से निरुद्ध कर दिया जाय तो फिर ऐसा कारण नहीं जो मन की निश्चलता में बाधा उत्पन्न कर सके। शास्त्र में कहा भी गया है-

मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।  
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥

अर्थात् मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। जो मन विषयों में आसक्त हो वह बन्धन का और जो विषयों से पराड़ मुख हो वह मोक्ष का कारण होता है। प्रत्याहार के सम्बन्ध में महर्षि पतंजलि कहते हैं-

“स्वविषयासम्योगेचित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः”

अर्थात् अपने विषयों से सम्बन्ध न रहने पर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में तदाकार हो जाना प्रत्याहार है। इन्द्रियों सदैव अपने-अपने विषयों में लीन होने के लिये तत्पर रहती हैं। जिस इन्द्रिय का जो विषय है उसका उस विषय में तदाकार हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु उस इन्द्रिय के स्वभाव को नियंत्रित करके उसे उसके विषय में लीन न होने देना और ध्येय के आकार में उसे विलीन कर देना ही प्रत्याहार का स्वरूप है। योगवाशिष्ठ जो योग-शास्त्र का अनुपम ग्रंथ है में चित्त की चंचल वृत्ति के निरोध के दो उपाय बताये गये हैं-

“द्वौ क्रमौ चित्त-नाशस्य योगो ज्ञानं च राधवं”

अर्थात् चित्त की चंचल वृत्ति के निरोध के दो उपाय हैं- 1. योग, 2. ज्ञान

इन्द्रियों का अपने विषयों से रहित हो जाना ही इन्द्रियों को जीतना है। यह तभी सम्भव है जब चित्त एकाग्र हो जाता है और चित्त के निरोध होने पर इन्द्रियों का भी निरोध हो जाता है। यही इन्द्रियों का निग्रह योग की परम आवश्यकता है। प्रत्याहार की स्थिति में साधक का अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण रहता है तथा मन पवित्र होता है।

प्रत्याहार एक मानसिक क्रिया है तथा ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था है। मन की उपर्युक्त पांच अवस्थायें योग साधना में सफलता के क्रमिक विकास की अवस्थायें अथवा मानसिक विकास की अवस्थायें हैं। प्रत्याहार की स्थिति विक्षिप्तावस्था से एकाग्रता की ओर की अवस्था है। यह वह अवस्था है जो साधक के चित्त की चंचल वृत्तियों को जो बहिमुखी थीं अन्तमुखी करने की ओर प्रेरित करती है।

हठयोग की साधना में षट्कर्म, आसन, मुद्रा से शरीर को मल रहित, व्याधि रहित करके शक्ति सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार शरीर को व्यवस्थित करके प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों और मन को संयमित किया जाता है जिससे ध्यान और समाधि का सफलतापूर्वक साधन किया जा सके।

## योग-निद्रा

योग-साधना में उच्चतर सोपान की क्रियाओं प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आदि के लिये भूमिका तैयार करने में योग-निद्रा एक महत्वपूर्ण क्रिया है। चूंकि 'योग-निद्रा' में साधक की चित्त की वृत्तियाँ कुछ क्षण के लिये अन्तर्मुखी होती हैं इसलिये इसे प्रत्याहार की ही एक महत्वपूर्ण क्रिया कह सकते हैं।

योग-निद्रा एक प्रकार से आध्यात्मिक निद्रा है जो शरीर को न केवल बाह्य रूप से अपितु आन्तरिक रूप से भी, आराम पहुँचाती है इस से शरीर प्रसन्न एवं प्रफुल्लित बनी रहती है। योग-निद्रा की स्थिति में साधक न पूर्ण जाग्रत स्थिति में रहता है और न ही पूर्ण सुषुप्ति की अवस्था में। इसके अभ्यास में बाह्य जगत् से सम्बन्ध विच्छेद होकर आन्तरिक अनुभूति होकर अन्तः जगत् से अवचेतन तथा अचेतन सम्बन्ध जोड़ने लगता है जो शरीर एवं मन को तनाव रहित बनाता है। यह क्रिया शारीरिक तनाव को तो दूर करती ही है साथ की मानसिक, प्राणिक, भावनात्मक तनावों को भी दूर करने में सहयोगी है। थकावट, निष्क्रियता आदि में इस क्रिया का अभ्यास शरीर में नई स्फूर्ति एवं ताजगी का संचार करता है। नींद ठीक से आयेगी। शरीर में अनावश्यक भारीपन एवं क्लान्तता नहीं रहेगी। यह शरीर की पाचन क्रिया को तो सामान्य बनाने में तो सहायक है ही प्राण एवं रक्त-संचार को भी व्यवस्थित, सहज एवं समरूपता प्रदान कर हृदय रोग, रक्तचाप आदि में लाभ पहुँचाती है। सामान्य रूप से योगनिद्रा का अभ्यास निम्न लिखित विधि से किया जा सकता है।

**विधि -** सर्वप्रथम श्वासन की स्थिति में लेटकर दोनों पैरों के बीच लगभग एक फिट की दूरी रखकर दोनों हाथों को कमर के बगल में रखकर हथेलियों को ऊपर की ओर खुला रखें। आँखें बन्द करके श्वास सहज एवं सामान्य रखें। श्वास सहज एवं सामान्य होने पर मन स्वतः सहज एवं सामान्य स्थिति में हो जायेगा। अब मन से शरीर के विभिन्न अंगों की क्रमिक रूप से स्पष्ट एवं जीवन्त कल्पना करें। शरीर के प्रत्येक अंग को, रंग, रूप, बनावट आदि को पूरी सजगता, स्पष्टता और जीवन्तता के साथ सतत रूप से, साक्षी भाव से देखें परन्तु यह प्रयास करें कि मन सुषुप्ति की स्थिति में न जाय। योग-निद्रा का इसी प्रकार अभ्यास किसी प्रिय वस्तु, देव-प्रतिमा अथवा किसी प्राकृतिक दृश्य आदि पर भी किया जा सकता है। शरीर पर योग-निद्रा का अभ्यास करने के लिये शरीर के प्रत्येक अंग के रूप, रंग, बनावट पर क्रमशः अन्तश्चक्षु से कल्पना करते हुए इसे देखें। सर्वप्रथम दायें पैर को लें, पूरे पैर की मन से कल्पना करते हुये उसकी बनावट आदि की कल्पना करें। अब पैर के एक-एक भाग की कल्पना करें। दायें पैर का अङ्गूठा, अङ्गूठे के बगल की अंगुली, दूसरी अंगुली, तीसरी अंगुली चौथी अंगुली, पंजा, टखना, घुटना, जाँघ, दाँयां पैर, पूरा दाँयां पैर जमीन से स्पर्श कर रहा है इसी प्रकार बायें पैर का अंगूठा, अङ्गूठे के बगल की अंगुली, दूसरी अंगुली, तीसरी अंगुली, चौथी अंगुली, बायें पैर का पंजा, टखना, घुटना, जाँघ, दायें पैर का टखना आदि बायां पैर जमीन से स्पर्श कर रहा है बायां पैर की जमीन से स्पर्श रेखा, कमर, पेट, छाती, पीठ, गर्दन, दाँयां कान, बाँयां कान, दार्ढी आँख की ऊपरी पलक, निचली पलक दोनों पलकों की स्पर्श रेखा बाँयी आँख की ऊपरी पलक, निचली पलक दोनों पलकों की स्पर्श-रेखा, दायी

नाक, बाँयी नाक, दाँयां बाँयां गला, बाँया गाल, दाँयां गाल, ऊपर का ओष्ठ, नीचे का ओष्ठ दोनों ओष्ठों की स्पर्श-रेखा, ठुड़डी, अपना पूरा चेहरा, दाँया हाथ, दाँयें हाथ का अँगूठा, तर्जनी अँगूली, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा हथेली, कोहनी, कंधा, दायां हाथ जमीन से स्पर्श कर रहा है दायां हाथ तथा जमीन की स्पर्श रेखा। दाया हाथ, बाया हाथ का अँगूठा, तर्जनी, मध्यमा, बनामिका, कनिष्ठा, हथेली, कलाई, कोहनी, कंधा, पूरा बाया हाथ तथा जमीन की स्पर्श रेखा पूरा शरीर जो शव के समाप्त होने पर आँखे धीरे-धीरे से खोलें। पूरी क्रिया में जो आन्तरिक शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हुई उसकी अनुभूति करें। इस का अभ्यास समयानुसार किया जा सकता है।

इस प्रकार योग-निद्रा का अभ्यास शवासन में लेटकर किसी देव-प्रतिमा अथवा प्राकृतिक दृश्य पर भी किया जा सकता है।

## प्राणायाम

श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति को अवरुद्ध कर शास्त्रीय विधि से श्वसन की क्रिया प्राणायाम कहलाती है। “प्राणायाम” शब्द से ही स्पष्ट है प्राण+आयाम अर्थात् प्राण का आयाम अथवा विस्तार। प्राणायाम वह क्रिया है जिसमें प्राणिक ऊर्जा का शरीर में अधिक से अधिक विस्तार हो सके। ‘‘प्राण’’ वायु का सूक्ष्म रूप है। जो सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। प्राण ही मन और आत्मा के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। ‘‘मन’’ स्थूल शरीर का अंग है तो “आत्मा” सूक्ष्म शरीर का। जब प्राण शरीर से अलग हो जाता है तब सूक्ष्म शरीर (आत्मा) भी शरीर से अलग हो जाती है और जीव की मृत्यु हो जाती है।

प्राण ही शरीर की सभी प्रकार की क्रियाओं का संचालन करता है। शरीर के अन्दर अलग-अलग स्थान एवं कार्य की दृष्टि से यही विभिन्न नामों से जाना जाता है जिन्हें पंच प्राण कहते हैं। ये पंच प्राण इस प्रकार हैं-

1. प्राण, 2. अपान, 3. उदान, 4. समान, 5. व्यान

1. प्राण - श्वसन की क्रिया में श्वास के साथ जोवायु अन्दर जाती है वह ‘‘प्राण’’ कहलाती है। यह शरीर की मांस पेशियों की कार्यशीलता व शक्ति को बढ़ाती है। शरीर में इसका स्थान हृदय में है।

2. अपान - श्वसन की क्रिया में जोवायु नाक, मुँह अथवा गुदा द्वार से बाहर निकलती है उसे “अपान” कहते हैं। इसके द्वारा आंतों को बल मिलता है। यह उपस्थ एवं मूत्रेन्द्रिय की क्रियाओं को संचालित करती है इसका स्थान नाभि प्रदेश के नीचे स्थित है।

3. उदान - वह वायु जो कंठ के ऊपर के अंगों पर नियंत्रण रखती है उदान वायु कहलाती है। यह नेत्र, नासिका, कान, मस्तिष्क आदि की कार्यशीलता व शक्ति को बढ़ाती है।

4. समान - वह वायु जिसके माध्यम से सभी प्रकार की प्राण शक्तियों का संचालन एवं नियोजन होता है वह समान वायु कहलाती है। यह वायु यकृत, आंत, क्लोम, जठराग्नि व पेट में रसग्राव को प्रेरित एवं नियंत्रित करता है यह हृदय तथा परिभ्रमण संस्थान को भी क्रियाशील रखता है और इसका स्थान शरीर में छाती व नाभि का मध्यवर्ती प्रदेश है।

5. व्यान - यह वायु सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। इसका मुख्य कार्य जठराग्नि एवं चयापचय क्रिया का संचालन है।

उपरोक्त पंच प्राणों के अतिरिक्त पांच उपप्राण भी हैं जो शरीर की छोटी-छोटी क्रियाओं को सम्पादित करते हैं-ये हैं-

1. देवदत्त-छींकना, 2. नाग-पलक झपकाना, 3. कृकल-जँभाई लेना, 4. कूर्म-खुजलाना, 5. धनंजय-हिचकी लेना आदि।

प्राण का सम्बन्ध सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर से होने के कारण सभी इन्द्रियों तथा मन का संचालन भी “प्राण” की क्रिया पर निर्भर करता है। अर्थात् अगर प्राण पर नियंत्रण हो जाय तो स्वतः ही मन तथा अन्य इन्द्रियों पर नियंत्रण हो जायेगा। प्राणायाम के द्वारा ‘प्राण’ पर नियंत्रण स्थापित कर ‘मन’ की सूक्ष्म तथा चंचल वृत्तियों को नियंत्रित किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि प्राणायाम के सम्बन्ध में कहते हैं-

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।

अर्थात् आसन के स्थिर होने पर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है। नासिका से वायु अन्दर खींचना श्वास कहलाती है तथा नासिका से वायु बाहर छोड़ना प्रश्वास कहलाती है। प्राणायाम में श्वास अन्दर लेना, श्वास को अन्दर अथवा बाहर रोककर रखना तथा श्वास को बाहर छोड़ना तीन क्रियायें होती हैं। श्वास को अन्दर लेने की क्रिया पूरक, श्वास रोकने की क्रिया कुम्भक तथा श्वास बाहर छोड़ने की क्रिया रेचक कहलाती है। महर्षि पतंजलि ने भी प्राणायाम के भेद के सम्बन्ध में स्पष्ट किया है-

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ।

अर्थात् प्राणायाम बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति भेद से तीन प्रकार का होता है। देश, काल और संख्या से देखा हुआ (नापा), लम्बा और हल्का (दीर्घ सूक्ष्म) होता है।

**बाह्यवृत्ति-प्राणायाम-** श्वास को बाहर निकालना, इसे ‘रेचक’ कहते हैं।

**आभ्यन्तरवृत्ति-प्राणायाम-** श्वास को अन्दर लेना, इसे “पूरक” कहते हैं।

**स्तम्भवृत्ति-प्राणायाम-** श्वास-प्रश्वास दोनों की गति को रोक देना, इसे कुम्भक कहते हैं।

“पूरक” में एक मात्रा श्वास लेकर मूलाधार तक श्वास को ले जाना, “कुम्भक” में चार मात्रा श्वास को नाभि स्थल में रोकना तथा ‘रेचक’ में दो मात्रा में नासिका तक श्वास को छोड़ना विहित हैं। प्राणायाम की इस क्रिया को एक निश्चित संख्या में करना ही देशकाल संख्या परिदृष्ट कहलाता है। देशकाल संख्या की दीर्घसूक्ष्म जानकारी के लिये जब ‘रेचक’ की क्रिया में नासिका के सामने लगभग 12 अंगुल की दूरी पर पतली रुई रखने से अगर रुई हिलाने लगे तो रेचक दीर्घसूक्ष्म होता है। पूरक की क्रिया में श्वास लेने पर शरीर में हल्की सनसनाहट का अनुभव हो तो “पूरक” दीर्घसूक्ष्म होता है। कुम्भक की क्रिया में स्थिरता बनी रहती है। श्वास-प्रश्वास की गति को 36 मात्रा तक (1 मात्रा हाथ को घुटने से चारों ओर घुमाकर एक चुटकी बजा देने में जितना समय लगे उसे कहते हैं) तथा 36 संख्या तक ले जाने पर ही दीर्घसूक्ष्म होता है।

सामान्य स्थिति में मनुष्य जो श्वास छोड़ता है उसकी लम्बाई 6 अंगुल होती - विभिन्न क्रियाओं के समय श्वास छोड़ने की लम्बाई इस प्रकार होती है-

सामान्य अवस्था - 6 अंगुल  
 गायन काल - 16 अंगुल  
 घूमते समय - 24 अंगुल  
 व्यायाम के समय - 36 अंगुल  
 भावनात्मक तनाव की अवस्था - 12 अंगुल  
 भोजन करते समय - 20 अंगुल  
 सोते समय - 30 अंगुल  
 काम किया के समय - 36 अंगुल

किसी भी जीव की आयु उसके श्वास की किया पर निर्भर करती है। यदि जीव के श्वास की लम्बाई व गति कम है तो वह दीर्घायु होता है और यदि जीव के श्वास की लम्बाई व गति तेज हो तो वह अल्पायु होता है। प्राणायाम का नियमित अभ्यास श्वास की लम्बाई व गति को कम करने में सहायक है जो शरीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के साथ दीर्घायुष्य में भी सहायक है। प्राणायाम के अभ्यास से श्वास-प्रश्वास की लम्बाई व गति को नियंत्रित काना चाहिये। प्राणायाम का अभ्यास करने से पूर्व निम्न लिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। धेरण्ड संहिता में इस सम्बन्ध में लिखा है-

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम् ।  
 नाड़ी शुद्धिश्च तत् पश्चात् प्राणायामं च साधयेत् ॥

अर्थात् प्रथमतः स्थान, काल, मिताहार और नाड़ी की शुद्धि करें। इसके पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

**प्राणायाम का स्थान** - प्राणायाम का अभ्यास एकान्त, शुद्ध वातावरण तथा सुरक्षित स्थान पर करना चाहिये। दूर देश, अरण्य, कोलाहल की जगह तथा गन्दगी की जगह, धूल-धुएं वाली जगह पर प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

**काल** - नये साधक के लिये बसन्त और शारद ऋतु उपयोगी है। अनुभवी साधक के लिये कोई बन्धन नहीं। प्राणायाम का अभ्यास सूर्योदय से पूर्व है। नित्य-क्रिया से निवृत्त होने के बाद सबसे पहले आसन करें तत्पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

**आहार** - साधक का आहार शुद्ध एवं सात्त्विक होना चाहिये। मद्य, मांस, चटपटा, गरिष्ठ, बासी, उत्तेजक, कटु, और खट्टे पदार्थों का आहार त्याग करें।

**नाड़ीशुद्धि** - कुश का आसन, मृगछाला अथवा कम्बल में से किसी आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके नाड़ी शुद्धि होने पर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। नाड़ीशुद्धि के दो साधन हैं-

1. षट्कर्म द्वारा
2. बीजमंत्र द्वारा

आसन - प्राणायाम का अभ्यास करने के लिये पद्मासन, सिद्धासन, स्वास्तिकासन अथवा सुखासन से चार मुख्य आसन हैं। उक्त चार आसनों में से किसी में बैठकर रीढ़ की हड्डी सीधी रखें आसन दृढ़ एवं स्थिर रहना चाहिये।

प्राणायाम की मुद्रा - प्राणायाम के किसी भी आसन में बैठकर बायें हाथ को बायें पैर के घुटने पर रखें। दायें हाथ की मध्यमा और तर्जनी अंगूली को मोड़कर अंगुष्ठ, अनामिका और कनिष्ठा को खुली रखें। जब नासिका के दायें छिद्र को बंद करना हो तो अंगुष्ठ से और बायें छिद्र को अनामिका अँगूली से बंद करें। यदि दोनों नासिका छिद्र बन्द करने हों तो अंगुष्ठ और अनामिका से बन्द करें।

**प्राणायाम से लाभ -**

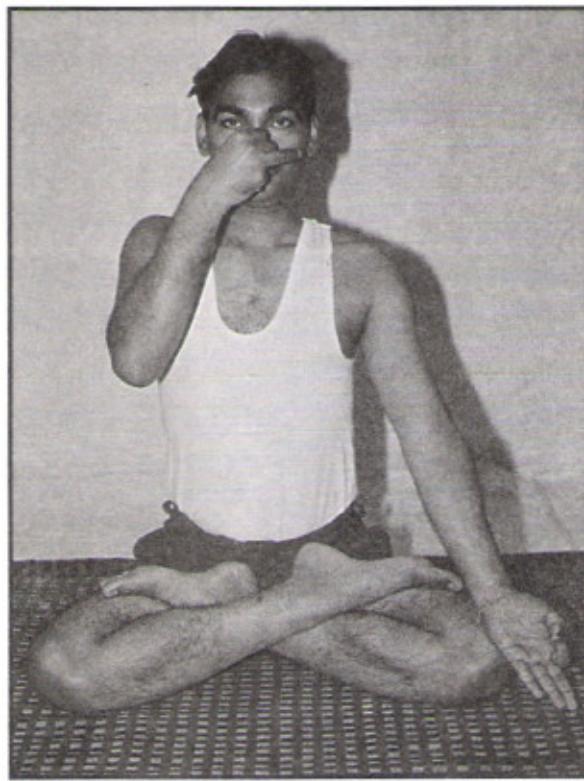
1. प्राणायाम के अभ्यास से शरीर की आक्सीजन लेने की क्षमता बढ़ती है जिससे शरीर के सभी अवयव एवं रक्त संचार आदि के संस्थान सक्रिय व तेज होते हैं तथा शरीर पुष्ट, स्वस्थ एवं क्रियाशील बनता है।
2. प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ी शुद्धि होती है। आक्सीजन पर्याप्त मात्रा में मिलने पर रक्त शुद्ध होता है। रक्त शुद्धि से शरीर शोधन स्वतः हो जाता है।
3. प्राणायाम के अभ्यास से इवास-प्रश्वास की स्वाभाविक गति को अवरुद्ध कर प्राण पर नियंत्रण किया जा सकता है। प्राण पर नियंत्रण होने से मन पर स्वतः नियंत्रण हो जाता है।
4. प्राणायाम के अभ्यास से मन की चंचलता पर नियंत्रण स्थापित करके मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बढ़ाया जा सकता है।
5. प्राणायाम के अभ्यास से शरीर में स्थित अन्तःस्प्रवी ग्रन्थियों के साथ-साथ विभिन्न शक्ति केन्द्रों को जागृत कर साधक अपनी आन्तरिक प्रतिभा का जागरण कर सकता है।

**प्राणायाम के लिये आवश्यक सावधानी -**

प्राणायाम का अभ्यास करने से पूर्व कुछ आवश्यक सावधानी आवश्यक है।

1. प्राणायाम का अभ्यास सुरक्षित, एकान्त तथा स्वच्छ जगह पर ही करना चाहिये।
2. प्राणायाम का अभ्यास समतल जमीन अथवा चौकी पर कम्बल बिछाकर करें।
3. प्राणायाम का अभ्यास एक निश्चित आसन में शान्त मन से करना चाहिये।
4. रोग की अवस्था में तथा गर्भवती महिलाओं को प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

मुद्रा एवं प्रभाव की दृष्टि से प्राणायामों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है-



**नाडीशोधनप्राणायाम**

1. सामान्य प्राणायाम - नाड़ी शोधन, उज्जायी तथा भ्रामरी आदि सामान्य प्राणायाम हैं। इन का अभ्यास हर मौसम में किया जा सकता है।

2. शीतलता प्रदान करने वाला प्राणायाम - शीतली, सीत्कारी एवं चन्द्रभेदी आदि प्राणायाम इस वर्ग में आते हैं। इन का अभ्यास ग्रीष्म ऋतु में ही करना चाहिए।

3. उष्णता प्रदान करने वाले प्राणायाम - सूर्यभेदी, भस्त्रिका तथा कपालभाति आदि प्राणायाम उष्णताप्रदायी हैं। इसलिए इन्हें शीत ऋतु में ही करने चाहिए। विभिन्न प्रकार के प्राणायामों की विधि तथा उन के लाभ इस प्रकार हैं-

1. नाडीशोधनप्राणायाम - हमारे सम्पूर्ण शरीर में तमाम सूक्ष्म नस-नाड़ियों का जाल बिछा है जो शरीर एवं मस्तिष्क में रक्त, आक्सीजन आदि लाने तथा अशुद्ध रक्त विषाक्त तत्वों को वापस ले जाने का कार्य करती है। सम्पूर्ण शरीर में पैरों से मस्तिष्क तक फैली इन सूक्ष्म नस-नाड़ियों का शोधन जिस प्राणायाम के द्वारा होता है उसे नाड़ी शोधन प्राणायाम कहते हैं।

प्रथम स्थिति - इस प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी भी आसन में बैठकर बायें हाथ की हथेली बायें पैर के घुटने पर

रखें तथा दायें हाथ से प्राणायाम की मुद्रा बनाते हुये दाहिनी नासिका को बन्द करें तथा बायीं नासिका को बन्द करके दायीं नासिका से भी 10 आवृत्ति पूरक-रेचक की करें। पूरक-रेचक की क्रिया में श्वास गहरी एवं लम्बी करने का अभ्यास करें। अभ्यास के अनुसार 15-20 दिन तक बराबर करें।

**द्वितीय स्थिति** - नाड़ी शोधन-प्राणायाम की प्रथम स्थिति का सफलतापूर्वक अभ्यास होने पर द्वितीय चरण में आवें। प्राणायाम के लिये निर्धारित आसन में प्राणायाम की मुद्रा के साथ बैठ जाय। प्रथम स्थिति का अभ्यास करके द्वितीय स्थिति के लिये अपने आप को तैयार करें। द्वितीय स्थिति में दायीं नासिका को बन्द करके बायीं नासिका से पूरक करें फिर बायीं नासिका बन्द रखते हुये दायीं नासिका से धीरे-धीरे रेचक करें। बायीं नासिका बन्द रखते हुये दायीं नासिका से पूरक करें। पुनः दायीं नासिका को बन्द करके बायीं नासिका से रेचक करें। इस प्रकार बायीं नासिका से पूरक, दायीं से रेचक दायीं से पूरक बायीं से रेचक की क्रिया को एक आवृत्ति कहते हैं। प्रतिदिन 10 आवृत्ति का अभ्यास करें। इस बात का ध्यान अवश्य दें कि अभ्यास बढ़ाने के साथ-साथ श्वास गहरी, लम्बी व लययुक्त हो 15-20 दिन तक पूरी तन्मयता के साथ बराबर इसका अभ्यास करें।

**तृतीय स्थिति** - पूर्व की दो स्थितियों में प्राणायाम की पूरक-रेचक क्रिया के साथ अभ्यास किया गया। तृतीय स्थिति में “कुम्भक” के साथ प्राणायाम होगा। पूर्व की दोनों स्थितियों के समान प्राणायाम के लिये निर्धारित आसन में बैठकर दायीं नासिका को बन्द करके, बायीं नासिका से पूरक करें कुछ समय श्वास अन्दर रोककर, दायीं से रेचक करें। पुनः दायीं से पूरक करके, श्वास अन्दर रोककर बायीं नासिका से रेचक करें। यह एक आवृत्ति हुई। प्रारम्भ में नये अभ्यासी पूरक, कुम्भक तथा रेचक बराबर मात्रा में करें, कुछ दिन कुम्भक का अभ्यास होने पर इस स्थिति को 1:2:2 में करें। धीरे-धीरे अभ्यास के बाद इस अनुपात को 1:4:2 तक ले जायें।

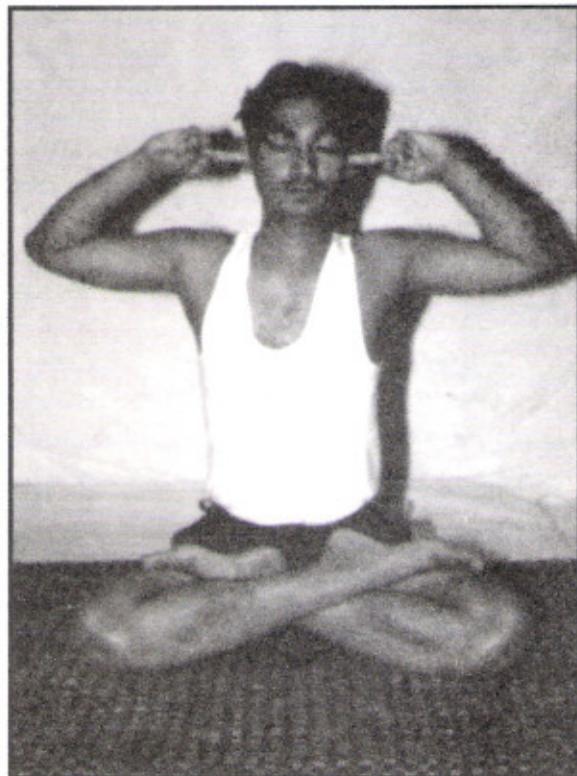
**चतुर्थ स्थिति** - तृतीय स्थिति में अन्तः कुम्भक का अभ्यास किया जाता है। नाड़ी शोधन की चतुर्थ स्थिति पूरक अन्तः कुम्भक, रेचक के बाद बाह्य कुम्भक के साथ होती है। जब नाड़ी शोधन प्राणायाम की तृतीय स्थिति सध जाय तब उसी मुद्रा में पूरक, अन्तः कुम्भक, रेचक तथा बाह्य कुम्भक का अनुपात 1:4:2:2 में अभ्यास करें जितनी आवृत्ति बढ़ा सकें सहज रूप से बढ़ायें।

#### लाभ -

1. हमारे शरीर में 72 हजार नाड़ियों का जाल बिछा है। नाड़ी शोधन प्राणायाम से सभी नाड़ियों का शोधन होता है जिससे शुद्ध रक्त के साथ आक्सीजन सम्पूर्ण शरीर के अवयवों तक पहुँचता है जो शरीर एवं मन को स्वस्थ एवं प्रसन्न रखता है।
2. इस प्राणायाम से उन मानसिक शक्तियों का विकास होता है जो मन को शान्त, स्थिर एवं एकाग्र करने में सहायक है।
3. इस प्राणायाम का नियमित अभ्यास हृदयरोग, उच्च रक्तचाप, मानसिक तनाव में लाभ पहुँचाता है।
4. इस प्राणायाम का नियमित अभ्यास इडा और पिंगला नाड़ी के असन्तुलन को दूर करके शारीरिक एवं मानसिक

क्रियाओं में संयोजन स्थापित करता है।

2. उज्जायी-प्राणायाम - प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी आसन में बैठकर खेचरी मुद्रा की स्थिति में ऊपर-नीचे के दातों को सटाकर जिह्वा को पीछे की ओर मोड़कर तालुमूल से लगा लें। ग्रीवा का संकोच करते हुये गले से खरटी की आवाज पूरक-रेचक के साथ करें। प्रारम्भ में इस प्राणायाम का अभ्यास 15-20 बार करें। धीरे-धीरे अभ्यास



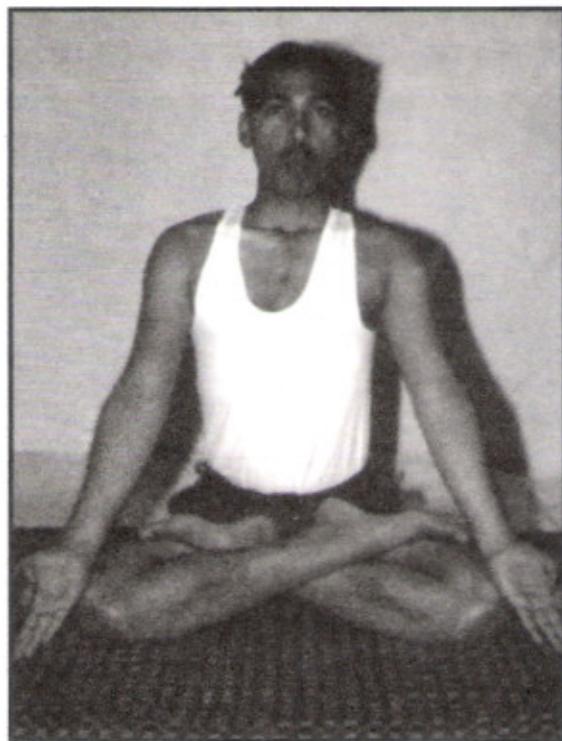
**भ्रामरीप्राणायाम**

बढ़ायें। यही उज्जायी प्राणायाम है।

**लाभ -**

1. इस प्राणायाम के अभ्यास से गले से सम्बन्धित समस्त रोगों जैसे टांसलाइटिस आदि में लाभ पहुंचता है।
  2. अनिद्रा की स्थिति, मानसिक तनाव की स्थिति में इस प्राणायाम के अभ्यास से लाभ होता है।
  3. इस प्राणायाम का नियमित अभ्यास नाड़ी संस्थान की अनावश्यक उत्तेजना व तनाव का दूर करता है।
  4. यह विशुद्धि चक्र के जागरण में सहायक है।
3. भ्रामरीप्राणायाम - चूंकि इस प्राणायाम में भ्रमर गुंजन जैसी ध्वनि निकलती है इसलिये इसे “भ्रामरी-प्राणायाम” कहते हैं। इस प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी आसन में बैठकर आंखे बन्द करके दोनों हाथों की तर्जनी

अँगुलियों से दोनों कानों को बन्द कर लें, गहरी इवास लेते हुये कुछ देर के लिये इवास अन्दर रोकें फिर गले से भ्रमर की तरह आवाज निकालते हुये धीरे-धीरे रेचक करें। जब तक पूरी इवास बाहर न निकल जाये तब तक भ्रमर की आवाज करें। मुँह बन्द रखते हुये रेचक नाक से करना चाहिए।



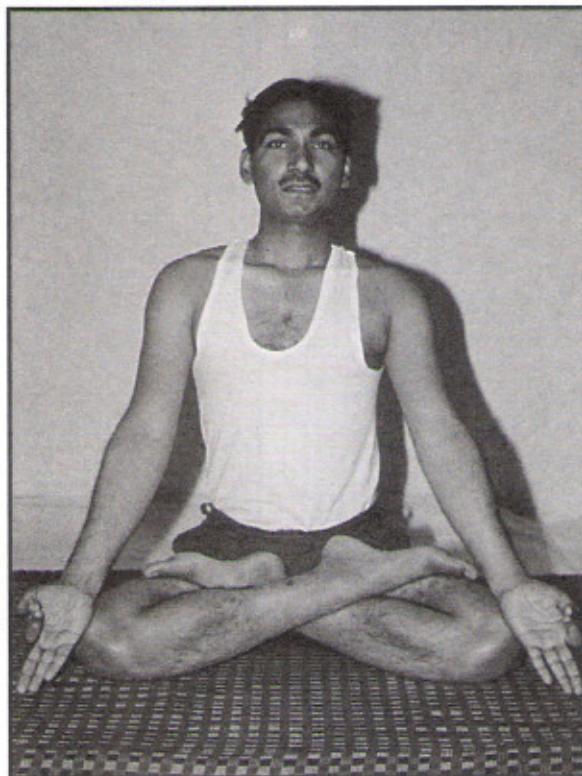
### शीतलीप्राणायाम

लाभ -

1. भ्रामरी प्राणायाम का नियमित अभ्यास “नाद योग” की भूमिका तैयार करता है जो मन को स्थिर एवं एकाग्र करने में सहायक है।
2. यह गले के साथ-साथ नाक, कान और आंख के रोगों में भी लाभ पहुँचाता है।
3. उच्च रक्त चाप में लाभ पहुँचाता है, स्वर को मधुर, स्पष्ट और प्रभावशाली बनाता है।
4. शीतलीप्राणायाम - प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी भी आसन में बैठकर दोनों हाथों की हथेली को दोनों घुटनों पर रखें। जिह्वा को नालीनुमा मोड़कर मुँह खुला रखते हुये जिह्वा की सहायता से मुँह से धीरे-धीरे इवास को फेंकड़ों में भरकर “पूरक” करें। कुछ क्षण कुम्भक की स्थिति में रहकर मुँह बन्द करके नासिका से रेचक करें। इस क्रिया का अभ्यास प्रारम्भ में 8-10 बार करें। धीरे-धीरे आवश्यकतानुसार अभ्यास बढ़ाया जा सकता है।

**लाभः -**

- यह प्राणायाम मुङ्ह व गले के रोगों में लाभ पहुँचाता है।



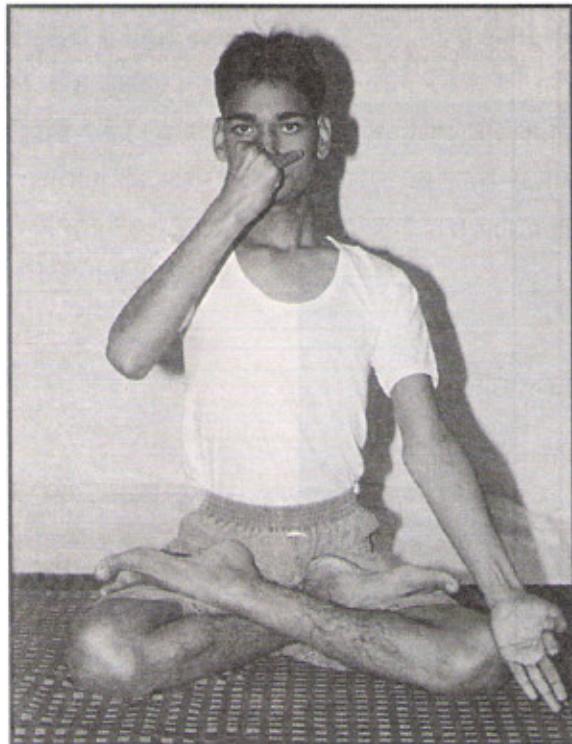
### सीत्कारीप्राणायाम

- उच्च रक्तचाप को नियन्त्रित करता है।
- कफ व पित्त के रोगों को दूर कर रक्त-शोधन करता है।

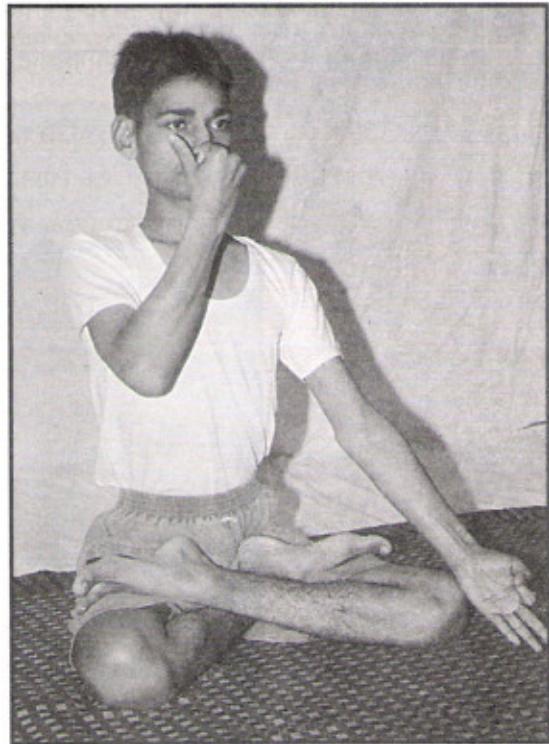
- यह प्राणायाम नियमित अभ्यास से मुख-प्यास पर विजय प्राप्त कराता है।

**विशेषः** - इस प्राणायाम का अभ्यास योगासन तथा अन्य प्राणायामों के अन्त में करना चाहिये जिससे शरीर में उत्पन्न अनावश्यक ताप कम हो सके।

- सीत्कारीप्राणायाम - प्राणायाम के लिये निर्धारित आसन में बैठकर दोनों हाथों को ज्ञानमुद्रा में दोनों घुटनों पर रखें। अब खेचरी मुद्रा की तरह जिह्वा को तालूमूल में लगाकर ऊपर-नीचे के दन्त पंक्ति को एकदम सटाकर ओठों को खोलकर धीरे-धीरे सी-सी की आवाज करते हुये मुङ्ह से इवास लेकर फेफड़ों को पूरी तरह भर लें। जालन्धर बन्ध लगाकर जितनी देर आराम से रुक सकें रुकें फिर मुङ्ह बन्द कर नाक से धीरे-धीरे रेचक करें। इस क्रिया को अभ्यास प्रारम्भ में 8-10 बार करें।



चन्द्रभेदीप्राणायाम



सूर्यभेदीप्राणायाम

लाभ -

1. नाड़ी संस्थान की अनावश्यक उष्णता और उत्तेजना को दूर कर उसे शान्त, सौम्य और शक्तिशाली बनाता है।
2. यह गले, मुँह, नाक, जिह्वा, दन्त आदि रोगों को दूर करने में सहायक है।
3. यह कफ व पित्त के रोगों को दूर कर रक्त शोधन करता है।
4. ग्रीष्म ऋतु में इस प्राणायाम का अभ्यास अधिक करना चाहिये।
6. **चन्द्रभेदीप्राणायाम** - चन्द्र स्वर से पूरक की क्रिया होने से इसे “चन्द्रभेदी प्राणायाम” कहते हैं। प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी भी आसन में बैठकर बायें हाथ को बायें घुटने पर रखें। दायें हाथ को प्राणायाम की मुद्रा में ले जाकर दायीं नासिका से पूरक करें फिर अन्तः कुम्भक जितनी देर कर सकें करें तत्पश्चात् दायीं नासिका से रेचक करें। इसका अभ्यास कम से कम 10-15 बार करें।

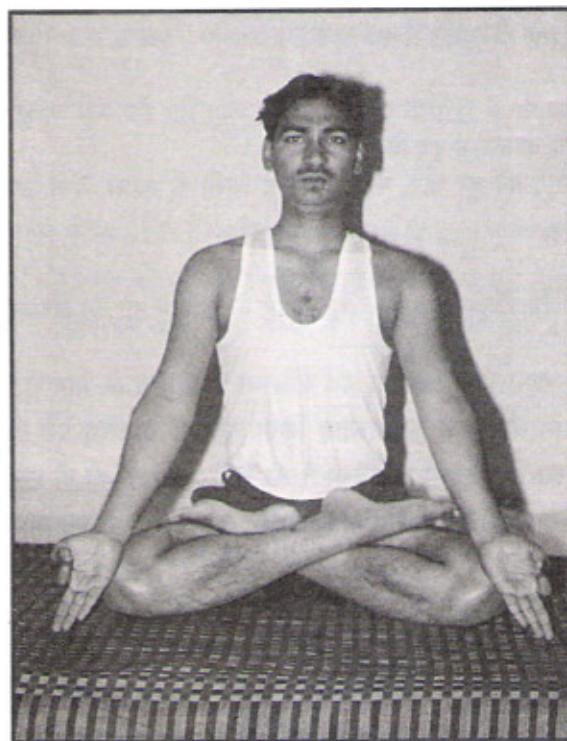
लाभ -

1. इस प्राणायाम का अभ्यास ग्रीष्म ऋतु में करना चाहिये।
2. इस प्राणायाम के अभ्यास से शरीर की थकावट व उष्णता दूर होती है।
3. यह प्राणायाम शरीर में शीतलता प्रदान कर मन की अनावश्यक उत्तेजना को शान्त करता है।

7. **सूर्यभेदी प्राणायाम** - इस प्राणायाम में ‘‘सूर्य स्वर’’ अथवा पिंगला नाड़ी से पूरक की क्रिया की जाती है इसलिये इसे सूर्यभेदी प्राणायाम कहते हैं। इस प्राणायाम का अभ्यास करने के लिये प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी भी आसन में बैठकर दायीं नासिका से पूरक करें फिर अन्तः-कुम्भक करें, जितनी देर कर सकें करें तत्पश्चात् बायीं नासिका से रेचक करें। 5-10 बार इसका अभ्यास करें।

**लाभ -**

1. इस प्राणायाम के अभ्यास से सूक्ष्म प्राणवाहिनी नाड़ियां मजबूत एवं सक्रिय बनती हैं।
2. यह प्राणायाम कुष्ठ, सुजाक, कब्ज, अपच आदि में लाभ पहुँचाता है।
3. इस प्राणायाम के अभ्यास से वात, कफ से उत्पन्न होने वाले रोग, रक्त एवं त्वचा-विकार आदि दूर होते हैं।



### भस्त्रिकाप्राणायाम

4. यह प्राणायाम प्राणिक ऊर्जा को सक्रिय करके शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ाता है जो बुढ़ापा दूर भगाता है।

**सावधानी** - इस प्राणायाम का अभ्यास गर्भी के दिनों में तथा पित्त-प्रधान-प्रकृति, अल्सर रोगी आदि को नहीं चाहिये।

8. **भस्त्रिकाप्राणायाम:** इस प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास की गति लोहार की धौकनी भाथी की तरह तेज होती है इसलिये इसे “भस्त्रिका प्राणायाम” कहते हैं। प्राण शक्ति की वृद्धि के लिये यह बड़ी सशक्त क्रिया है। इस प्राणायाम का अभ्यास निम्न चरणों के अनुसार सरलता से किया जा सकता है।

**प्रथम स्थिति** - प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी भी आसन में बैठकर बायें हाथ को बायें घुटने के ऊपर रखें। दायें हाथ को प्राणायाम की मुद्रा में लेकर दायीं नासिका को बन्द करके बायीं नासिका से पूरक व रेचक तेज गति से करें 10-15 बार इस पूरक-रेचक की क्रिया को तेजी से करने के बाद दीर्घ लम्बी श्वास लेकर अन्तःकुम्भक की स्थिति में आ जाय। जब तक सम्भव हो अन्तःकुम्भक की स्थिति में रहें तत्पश्चात् लम्बी गहरी रेचक क्रिया करें। इसी प्रकार इस क्रिया का अभ्यास बायीं नासिका बन्द करके दायीं नासिका के साथ भी करें।

**द्वितीय स्थिति** - प्रथम स्थिति का सफलता पूर्वक अभ्यास करने के बाद अब दोनों नासिका छिद्रों से एक साथ रेचक-पूरक का अभ्यास करें तथा दीर्घ श्वास लेकर अन्तःकुम्भक की स्थिति में आ जायँ, जब तक सम्भव हो अन्तःकुम्भक की स्थिति में रहें तत्पश्चात् धीरे-धीरे 'रेचक' करें।

**लाभ -**

1. इस प्राणायाम के अभ्यास से कफ रोग दूर होता है।
2. यह फेफड़ों की विषाक्त वायु को दूर कर, फेफड़े गले व छाती के श्वास, दमा, क्षय, प्लुरिसी आदि रोगों को दूर भगाता है।

**सावधानी -** हृदय रोगी, उच्च रक्त चाप तथा कमजोर फेफड़े के रोगियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहियें।

**9. कपालभाति प्राणायाम:-** कपाल का सामान्य अर्थ मस्तिष्क के सामने के भाग से है। चूंकि इस क्रिया में मस्तिष्क के सामने वाले भाग से प्राणायाम की क्रिया का अभ्यास किया जाता है इसलिए इसे कपालभाति प्राणायाम कहते हैं। कपालभाति की क्रिया सामान्य रूप से षट्कर्म की क्रिया है जो शरीर शोधन की ही एक प्रक्रिया है परन्तु प्राणायाम से समानता रखने के कारण इसे कपालभाति प्राणायाम कहते हैं। इस प्राणायाम का अभ्यास निम्न चरणों के अनुसार सरलता से किया जा सकता है।

**प्रथम स्थिति-** प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी भी आसन में बैठकर बायें हाथ को बायें घुटने के ऊपर रखें। दायें हाथ को प्राणायाम की मुद्रा में लेकर दायीं नासिका को बन्द करके बायीं नासिका से जल्दी श्वास बाहर छोड़े (रेचक) रेचक के पूर्व थोड़ा पूरक स्वतः ही होता जायेगा। 20-25 बार रेचक की क्रिया जल्दी-जल्दी करके अन्त में दीर्घ रेचक के साथ बहिःकुम्भक तथा महाबन्ध लगायें। महाबन्ध छोड़ने के बाद बायीं नासिका से पूरक करके दायीं नासिका से रेचक करें।

इसी प्रकार बायीं नासिका को बन्द करके दायीं नासिका से जल्दी-जल्दी रेचक की क्रिया करें, 20-25 बार रेचक क्रिया करने के बाद दीर्घ रेचक के साथ बहिःकुम्भक तथा महाबन्ध लगायें। महाबन्ध छोड़ने के बाद दायीं नासिका से पूरक करे बायीं नासिका से रेचक करें।

**द्वितीय स्थिति-** प्रथम स्थिति में अलग-अलग नासिकाओं से क्रमशः इस क्रिया का अभ्यास करें। द्वितीय स्थिति में दोनों

नासिका से एक साथ 10-15 बार जल्दी-जल्दी रेचक की क्रिया करके अन्त में दीर्घ रेचक करें। तथा बहिःकुम्भक के साथ महाबन्ध लगायें।

**लाभ-**

1. कपालभाति प्राणायाम से मस्तिष्क के अग्रभाग का शोधन होता है जो मन की चंचलता को दूर करने में सहायक है।
2. कफ के कृषित होने के कारण होने वाली बीमारियों में यह लाभ पहुंचाता है।
3. यह फेफड़ी से कफ को दूर करके उन्हें शुद्ध करता है।
4. यह नाक, कान, गले से सम्बन्धित बीमारियों में लाभ पहुंचाता है।
5. यह चेहरे की त्वचा में प्राण के संचार को बढ़ाकर मुहांसे, झाँई और झुरियों को दूर करता है।
6. यह मस्तिष्क को सक्रिय एवं स्वस्थ बनाकर मस्तिष्क के रक्त जमने या थक्का बनने की प्रवृत्ति को भी दूर करता है।

**सावधानी-** उच्चरक्त चाप, हृदय रोग एवं मस्तिष्क जनित गम्भीर बीमारी में कपालभाति प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

**10. काकीप्राणायाम-** प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी भी आसन में बैठकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें। रीढ़ की हड्डी तथा गर्दन सीधे रहे। मुँह को कौवे की चोंच की तरह बनाकर मुँह से धीरे-धीरे पूरक करके फेफड़ों को पूरा भरें। कुम्भक की स्थिति में जालन्धर बन्ध लगा सकते हैं। कुछ क्षण के बाद दोनों नासिका से रेचक करें। इस क्रिया को 8-10 बार करें।

**लाभ-**

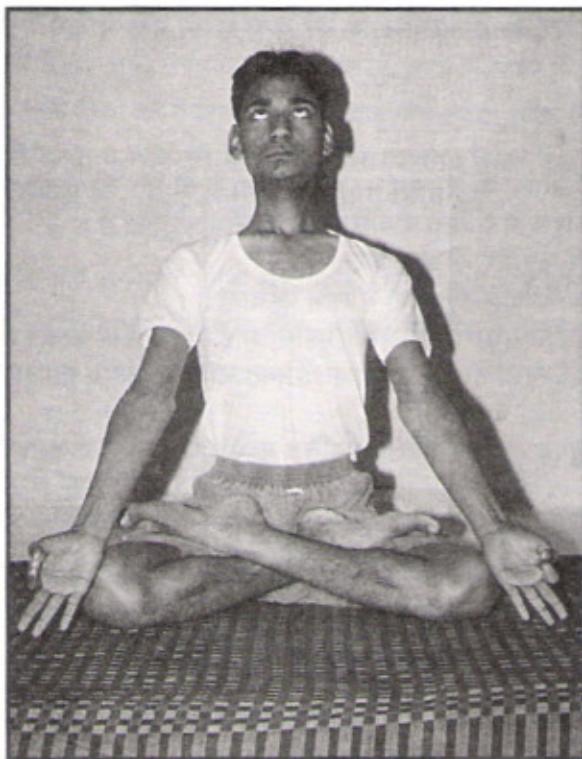
1. यह मुँह एवं गले के रोगों में लाभ पहुंचाता है।
2. यह उच्च रक्त चाप में लाभदायक है।
3. यह कफ एवं पित्त जनित रोगों को दूर करता है।

**11. भुजंगीप्राणायाम-** प्राणायाम के लिये निर्धारित आसन में बैठकर सौंप की तरह मुँह से पूरक करें। जब श्वास फेफड़ों से भर जाये तब मुँह बन्द करके दोनों नासिका से रेचक कर दें। इस क्रिया का अभ्यास 5-6 बार करें।

**लाभ-**

1. यह मुँह वह गले के रोग में लाभप्रद है।
2. यह उच्च रक्त चाप नियंत्रित करता है।

**12. मूर्छाप्राणायाम-** प्राणायाम के लिए निर्धारित किसी भी आसन में बैठकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें। सिर को ऊपर उठाते हुये दृष्टि आकाश की ओर करके दोनों नासिका से पूरक करें। अन्तः कुम्भक लगाकर दृष्टि शाम्भवी मुद्रा में करें। जब तक सम्भव हो अन्तः कुम्भक की स्थिति में रहकर पुनः सामान्य स्थिति में आकर धीरे-धीरे रेचक करें। बिना विश्राम लिए इसकी पुनरावृत्ति 5-7 बार करें।



### मूर्छप्राणायाम

#### लाभ

1. इस प्राणायाम के अभ्यास से मन की वहिर्मुखी वृत्ति को अन्तमुखी करने में सहायता मिलती है।
2. यह नेत्र ज्योति बढ़ाने सहायक है।
3. यह स्मरण शक्ति को बढ़ाता है।

**13. प्लाविनीप्राणायाम-** प्राणायाम के लिये निर्धारित असान में बैठकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें। अब मुंह से जल पीने की तरह ही वायु को लगातर पीते जायें। इस वायु सेवन की क्रिया को तब तक करें जब तक पेट पूरा वायु से भर न जाय। पुनः पेट की वायु से डकार लेकर बाहर निकालें। यह धौति क्रिया का ही एक रूप है। शंख प्रक्षालन की क्रिया के बाद इसका अभ्यास लाभदायक है।

#### लाभ -

1. यह पेट के समस्त रोगों में लाभदायक है तथा इस से जठराग्नि प्रदीप्त होती है।
2. यह पेट की कृमि का नाश करके अनावश्यक बदबू को दूर करता है।

14. केवलीप्राणायाम - इस के लिये प्राणायाम के लिये निर्धारित आसन में बैठकर पूरक व रेचक की क्रिया का अभ्यास करते हैं। पूरक की क्रिया के साथ “सो” शब्द का मानसिक जप तथा रेचक के साथ “हं” का मानसिक जप करें। जब पूरक-रेचक लाभ्युक्त होगा तो “सो**हम्**” का मानसिक जप निरन्तर होता है। इसे ही केवलीप्राणायाम कहते हैं। यह महत्वपूर्ण प्राणायाम अजपा-जप का ही एक रूप है।

**लाभः -**

1. यह मन की चंचलता को दूर कर एकाग्र एवं स्थिर करता है।
2. उच्चरक्तचाप में लाभप्रद है।
3. मानसिक तनाव को दूर करता है।
4. अनिद्रा आदि बीमारियों में लाभ पहुँचाता है।

15. चतुर्थ प्राणायाम - प्राणायाम के लिये निर्धारित किसी भी आसन में बैठकर दोनों हाथों को दोनों घुटने के ऊपर रखें। पूरक व रेचक में गति व समय समान रखें। पूरक व रेचक में गति व समय समान रखने के लिये एक निश्चित संख्या में पूरक तथा उतनी ही संख्या में रेचक करें। जब तक श्वास-प्रश्वास लययुक्त न हो, तब तक गिनती से अभ्यास हो। श्वास-प्रश्वास लययुक्त होने पर मंत्र के साथ भी इसका अभ्यास किया जा सकता है। प्रारम्भ में 5 मिनट तक अभ्यास करें फिर धीरे-धीरे आध्यात्मिक लाभ के लिये समय बढ़ायें।

**लाभः -**

1. मन की चंचलता को नष्ट करके मन को शान्त एवं स्थिर बनाता है।
2. उच्च रक्तचाप में लाभप्रद है।
3. मानसिक तनाव व अनिद्रा की स्थिति को दूर करता है।

16. केवल-कुम्भक-प्राणायाम - पूरक रेचक की क्रिया को किये बिना प्राणवायु को जहाँ का तहाँ रोकने की क्रिया केवल-कुम्भक प्राणायाम कहलाती है।

**विधि -** प्राणायाम के लिये निर्धारित आसन में बैठकर दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें सामान्य अवस्था में ही श्वास-प्रश्वास की स्वाभाविक स्थिति को रोककर जालन्धर बन्ध लगायें। जालन्धर बन्ध लगाकर प्राणवायु को हृदय से नीचे ले जाकर तथा मूलबन्ध लगाकर अपान वायु को मूलाधार से ऊपर उठाकर नाभि प्रदेश में स्थित समान वायु से मिलायें और उड़ीयान बन्ध लगायें। इसका अभ्यास योग्य गुरु के निर्देशन में ही करें।

**लाभ - यह-**

1. मन की एकाग्रता में सहायक है।
2. शरीर की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को जाग्रत करता है।
3. कुण्डलिनी-जागरण में भी सहायक है।

## “ध्यान”

हठयोग-साधना का छठाँ साधन ध्यान है। ध्येय विषय पर चित्त की वृत्ति को एकाग्र करके, उससे एकतानता स्थापित करके मन का निर्विषय होना “ध्यान” है। ध्यान की स्थिति में ध्याता, ध्यान और ध्येय रूपी त्रिकुटी के सिवाय और कुछ नहीं रहता है।

मनुष्य के मन का एक छोटा सा भाग ही सक्रिय है। यदि मानव मन के अधिकतम भाग को सक्रिय और चैतन्य बना दिया जाय तो मानव समाज अपनी सम्यता और संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित हो सकता है। ध्यान की विभिन्न क्रियायें मानव मन को समग्र रूप से सक्रिय और चैतन्य बनाने में सहायक हैं। सामान्य रूप से मनुष्य के मन के तीन भाग हैं-

1. चेतन मन
2. अवचेतन मन
3. अचेतन मन

1. **चेतनमन-** मन का जो भाग चेतन, सजग और सक्रिय प्रतीत होता है उसे ही हम “चेतन मन” कहते हैं। चेतन मन सम्पूर्ण मन का एक छोटा सा हिस्सा है जिसकी शक्ति और सीमा शोष हिस्से की तुलना में बहुत ही कम है।

2. **अवचेतनमन-** मन का वह हिस्सा जो पूरी तरह से चेतन, सजग व सक्रिय तो नहीं रहता परन्तु प्रयास करने पर कुछ-कुछ सजग और सक्रिय हो सकता है अवचेतन कहा जाता है। हमारी स्मृति का सम्बन्ध इस अवचेतन मन से ही है।

3. **अचेतन-मन-** मन का यह हिस्सा प्रसुप्त और निष्क्रिय सा रहता है। यह मन का सबसे विराट भाग है। प्रयास करने पर भी उसके संचित रहस्य चेतन मन पर नहीं उभरते। चेतन मन और अवचेतन मन के आधार के रूप में यह हिस्सा व्यक्ति के समग्र अस्तित्व के तल में निष्क्रिय सा रहते हुये भी सक्रिय रहता है पर इसकी सक्रियता का कोई आभास तक नहीं मिलता। पूर्व जन्म के संस्कार इसी अचेतन मन से जुड़े रहते हैं जो यदा-कदा अनजाने में परिचालित होते रहते हैं।

योग साधना के द्वारा जब मन का अवचेतन तथा अचेतन भाग विभिन्न यौगिक क्रियाओं के द्वारा सजग, सक्रिय एवं चैतन्य होता है तब वह स्थिति अविचेतन मन कहलाती है और इस स्थिति में साधक के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है। मन की वह स्थिति निर्विषय होते हुये भी चैतन्य रहती है। सारंग्य सूत्र ने भी ध्यान के सम्बन्ध में कहा है-

“ध्यानं निर्विषयं मनः” अर्थात् चेतना का ध्येय के अतिरिक्त किसी अन्य विषय-वस्तु से रहित होना ही ध्यान है। मन का निर्विचार होना साथ ही चैतन्य रहना ध्यान है।

सामान्य रूप से हमारे मन में अनचाहे विचारों की तरणे सतत चलती रहती है जिनकी आवृत्ति और वेग बदलते रहने से हमारी मनः स्थिति ही नहीं शरीर की आन्तरिक संरचना में होने वाली प्रक्रियायें भी अव्यवस्थित होती हैं। मन की तरंगों का रूप, रंग, आवृत्ति, वेग और घनत्व प्रतिक्षण परिवर्तित होता रहता है जिसके कारण मनुष्य का व्यक्तित्व अव्यस्थित और असंतुलित होता है जिसका प्रभाव मन और शरीर पर विभिन्न रोगों के माध्यम से दिखाई भी पड़ता है। इसलिये शारीरिक स्वास्थ्य के लिये मन का सन्तुलित एवं एकाग्र होना आवश्यक है जो ध्यान से ही सम्भव है। हमारी मानसिक चेतना के विविध आयाम हैं। योग-साधना से चेतना को स्वतः नैर्सर्गिक विकास के क्रम से उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है। योग-साधना में चेतना के विविध आयाम इस प्रकार है-

- जाग्रतावस्था-** चेतना की यह सामान्य स्थिति है जिसमें हमें जीव एवं जगत् का बोध होता है। इस स्थिति में शारीरिक एवं मानसिक सक्रियता के बावजूद सजगता और चेतनता का स्तर हर व्यक्ति में उसकी प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है।
- स्पन्नावस्था-** चेतना की यह स्थिति जिसमें शरीर तो निश्चेष्ट सा पड़ा रहता है परन्तु शरीर की आन्तरिक सभी क्रियाएँ स्वाभविक पर धीमी गति से चलती रहती हैं। इस स्थिति के जहां चेतन मन का नियंत्रण समाप्त सा हो जाता है वहीं अवचेतन और अचेतन मन में प्रछन्न रूप से वहीं इच्छायें, आकांक्षायें और वासनायें स्वप्न के रूप में सक्रिय हो जाती हैं।
- सुषुप्ति अवस्था-** स्वप्न रहित निद्रा ही सुषुप्ति अवस्था है। इस स्थिति में चेतना का विस्तार अन्य दोनों अवस्थाओं से ज्यादा होता है। सुषुप्ति अवस्था में हमारी चेतना का एक सूक्ष्म अंश प्रछन्न रूप से साक्षी भाव के रूप में उपस्थित रहता है। इसी से जागने पर हमें पता चलता है कि हम गहरी नींद में सोये थे।
- तुरीयावस्था-** यह चेतना की सबसे महत्त्वपूर्ण स्थिति है। चेतना का जो अंश अत्यन्त सूक्ष्म और प्रछन्न रूप से साक्षी भाव के रूप में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था में रहता है वह तुरीयावस्था में विराट् बन जाता है। ध्यान की स्थिति इसी अवस्था को प्राप्त करने का चरम पुरुषार्थ है। यह अवस्था चित्त की वृत्ति को एकाग्र व लययुक्त बनाती है। महर्षि पतंजलि ने भी योग-सूत्र में ध्यान के स्वरूप के सम्बन्ध में बताया है कि-

“तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्” अर्थात् जहाँ चित्त ठहराया जाय उस स्थान पर वृत्ति का एक सा बना रहना ही ध्यान है। मुख्य रूप से ध्यान के तीन प्रकार हैं-

- स्थूल ध्यान**
  - ज्योति ध्यान**
  - सूक्ष्म ध्यान**
- स्थूलध्यान-** वह ध्यान जिसमें मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान किया जाता है, दृश्य अथवा अदृश्य पदार्थों की ज्ञान प्राप्ति

के लिये जो ध्यान जाता है, वही स्थूल ध्यान है। जैसे-राम, कृष्ण, शिव अन्यान्य देवी-देवता आदि अथवा किसी इष्टदेव या गुरु आदि की मूर्ति आदि को आन्तरिक चक्षुओं से देखने का अभ्यास करना। यह ध्यान प्रायः सभी प्रकार के साधनों के लिये सुगम होता है। नये साधकों के लिये तो यह सबसे उपयुक्त विधि है क्योंकि आरम्भ में ध्यान का अभ्यास करने के लिये किसी प्रकार की आकृति अथवा वस्तु आवश्यक है।

स्थूल ध्यान की विधि- ध्यान के किसी आसन में बैठकर नेत्रों को बन्द करके हृदय में, नासिका के अग्र भाग में अथवा दोनों भौंहों के मध्य में दृष्टि को स्थिर करें और अपने इष्टदेव की मूर्ति के स्वरूप का ध्यान करें, मूर्ति की नखशिख पर्यन्त आकृति, धारण किये वस्त्र, माला, रत्न, आभूषण, किरीट, कुण्डल एवं विराजमान होने के सिंहासन अथवा मूर्ति के चारों ओर रखी हुई साज सामग्री आदि का भी ध्यान करना चाहिये जिससे धीरे-धीरे उस मूर्ति-विशेष पर मन एकाग्र होने लगेगा। किसी ध्येय विषय पर मन का तन्मय हो जाना ही ध्यान है।

2. साकार उपासकों के लिये शेषनाग रूपी शश्या पर शान्त आकार से शयन करते हुये भगवान विष्णु के सगुण ध्यान को “शान्ताकारं भुजगशयनम्....” इत्यादि मंत्र के जप तथा आकृति को अन्तः चक्षुओं से देखने का अभ्यास करें। धीरे-धीरे अभ्यास से मन की बाह्य वृत्तियाँ एकाग्र होकर अन्तः मुख हो जायेगी। इससे मन की चंचलता समाप्त होकर मन शान्त एवं स्थिर हो जायेगा।

किसी साकार रूप का ध्यान करना ही स्थूल ध्यान है और यह ध्यान ही परिपक्व होकर साधक को ज्योतिर्मय ध्यान और सूक्ष्म ध्यान के योग्य बनाता है।

2. **ज्योतिर्धर्मनि-** तेजोमय ज्योति रूप ब्रह्म का ध्यान ही ज्योतिर्धर्मनि कहलाता है। घेरण्ड संहिता में इसका विवेचन “मूलाधारे कुण्डलिनी भुजंगाकाररूपिणी” इत्यादि से किया गया है। इसके अनुसार मूलाधार में सर्पकार सी कुण्डलिनी शक्ति रहती है, वहीं दीपकलिका के आकार में जीवात्मा की विद्यमानता है। इसके अतिरिक्त भौंहों के मध्य और मन के ऊर्ध्व भाग में जो प्रणवात्मक ज्योति है उसका ध्यान ही तेजोध्यान है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में ज्योति ध्यान के सम्बन्ध में बताया गया है कि हृदय में अन्तर्यामी रूप से अंगुष्ठ परिमाण वाली ज्योति विद्यमान रहती है। पवित्र मन एवं हृदय वाले साधक ध्यान के माध्यम से उसकी अनुभूति कर सकता है। इस प्रकार आत्मा का ध्यान ही ज्योतिर्धर्मनि है। स्थूल ध्यान के परिपक्व होने पर ही ज्योतिर्धर्मनि का अभ्यास करना चाहिये।

3. **सूक्ष्मध्यान-** बिन्दुमय ब्रह्मकुण्डलिनी शक्ति का ध्यान ही सूक्ष्म ध्यान कहलाता है। सूक्ष्म ध्यान के सम्बन्ध में महर्षि घेरण्ड ने कहा है कि कुण्डलिनी शक्ति आत्मा के साथ संयुक्त होकर नेत्र रन्ध्रों से निकलती और ऊर्ध्वभाग में स्थित राजमार्ग में विचरण करती है, परन्तु वह अपने सूक्ष्मत्व और चंचलत्व के कारण दिखाई नहीं देती। इसी लिये कुण्डलिनी शक्ति का ध्यान शाम्भवी मुद्रा के साथ करना चाहिये। सूक्ष्म ध्यान के अभ्यास के लिये शरीर में स्थित षट्चक्रों और सहस्रार पर क्रमणः ध्यान का अभ्यास करना चाहिये।

कुण्डलिनी शक्ति नाभिकन्द के ऊर्ध्व भाग में साढ़े तीन कुण्डल मारे हुये सुप्तावस्था में रहती है। इससे सुषुम्णा नाड़ी का मार्ग बन्द रहता है। योग-साधना से जब कुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत होती है तो वह सुषुम्णा के मार्ग से सुई के समान षट्चक्र भेदन करती हुई सहस्रार रूपी शिव के साथ सामरस्य प्राप्त करती है। हमारे शरीर में षट्चक्रों की स्थिति इस प्रकार है-

1. **मूलाधारचक्र-** स्थूल शरीर में गुदा में स्थित गानाड्स ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में चार दल वाले मूलाधार चक्र की स्थिति है। अग्नि के समान रक्त वर्ण वाला यह बीजाक्षर “लं” से युक्त त्रिकोणाकार है। इसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं।
2. **स्वाधिष्ठान चक्र -** स्थूल शरीर में लिंग अथवा योनि के मूल में स्थित प्रोस्टेट ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में छः दल वाले स्वाधिष्ठान चक्र की स्थिति है। यह सूर्य के प्रकाश की तरह सिन्दूर वर्ण तथा बीजाक्षर “वं” से युक्त अंकुर के समान है। इसके अधिष्ठाता विष्णु हैं।
3. **मणिपूरकचक्र -** स्थूल शरीर में नाभि स्थान में स्थित सुप्रारेनल ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में दश दल का नील वर्ण तथा बीजाक्षर “रं” से युक्त मणिपूरक चक्र है। इसके अधिष्ठाता विष्णु हैं।
4. **अनाहतचक्र-** स्थूल शरीर में हृदय में स्थित थाइमस ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में बारह दल युक्त अनाहत चक्र की स्थिति है। यह चक्र स्वर्ण के समान कान्ति वाला बीजाक्षर “मं” से युक्त एवं वर्तुलाकार है। इसके अधिष्ठाता शिव हैं।
5. **विशुद्धचक्र-** स्थूल शरीर में कंठ में स्थित थायराइड ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में सोलह दल युक्त विशुद्ध चक्र स्थित है। यह धूम्रवर्ण का वर्तुलाकार एवं बीजाक्षर “हं” से युक्त है। इसके अधिष्ठाता रुद्र हैं।
6. **आज्ञाचक्र-** स्थूल शरीर में दोनों भौहों के मध्य पीनियल ग्रन्थि में ही सूक्ष्म शरीर में दो दल युक्त श्वेत वर्ण का आज्ञा चक्र स्थित है। इसका बीजाक्षर “ऊँ” है। इसके अधिष्ठाता महेश्वर हैं।
7. **सहस्रार-** स्थूल शरीर में मस्तिष्क में पिट्यूटरी ग्रन्थि का स्थान सूक्ष्म शरीर में सहस्रार चक्र का है। यह हजार दल युक्त श्वेत वर्ण का है। इसके अधिष्ठाता श्री गुरु माने जाते हैं।

उपर्युक्त छः चक्रों पर क्रमशः ध्यान का अभ्यास करने से कुण्डलिनी जाग्रत होकर षट्चक्र भेदन का अभ्यास सिद्ध होने पर सातवें चक्र सहस्रार का अभ्यास स्वतः सिद्ध होता है।

## “समाधि”

जब ध्याता, ध्यान से ध्येय विषय में मिलकर लय हो जाता है तब उस द्वैतभावरहित वृत्ति निरोध की अन्तिम अवस्था को “समाधि” कहते हैं। समाधि की अवस्था में ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का अपना रूप शून्य हो जाता है।

ध्यान की अवस्था में साधक को यह बोध रहता है कि मैं “ध्येय” का “ध्यान” कर रहा हूँ किन्तु जब ध्यान करते-करते चित्त ध्येय के रूप में बदलने लगता है और उसमें अपने रूप का अभाव सा हो जाता है तब साधना की वह अवस्था जिसमें ध्येय मात्र की प्रतीति हो “समाधि” कहलाती है। समाधि की दो अवस्थायें हैं-

1. **सविकल्प समाधि** - यह समाधि की प्रारम्भिक अवस्था है। इसमें ध्याता, ध्येय और ध्यान की त्रिकुटी के लय की, नियमित काल पर्यन्त चित्त की वृत्तियों की एक तदाकार स्थिति होती है। यद्यपि इस अवस्था में द्वैतभाव रहता है, तथापि अद्वैत भाव की इस प्रकार प्रतीति होती है जैसे मिट्टी से बनी किसी वस्तु में मिट्टी का ही भान हो उसी प्रकार द्वैत में अद्वैत का भान होता है। समाधि की इस अवस्था में किसी न किसी अवलम्बन की आवश्यकता रहती है। इस स्थिति में प्रज्ञा के संस्कार शेष रहते हैं। यह समाधि चित्त की एकाग्र अवस्था में होती है।

2. **निर्विकल्पसमाधि** - जब ध्याता, ध्येय और ध्यान भेद की अपेक्षा से रहित चित्त की वृत्तियों की स्थिति एक अद्वितीय ध्येय वस्तु में अत्यन्त ऐक्यभाव से तदाकार रूप में चिर काल पर्यन्त होती है तब निर्विकल्प समाधि होती है। समाधि की इस अवस्था में द्वैत भाव का सर्वथा अभाव रहता है। इस स्थिति में किसी अवलम्बन की भी आवश्यकता नहीं रहती तथा प्रज्ञा के संस्कार भी शेष नहीं रहते। सब वृत्तियां विलीन हो जाती हैं। यह स्थिति चित्त की निरुद्धावस्था में होती है। यह समाधि दुख की अत्यन्त निवृत्ति और आत्यन्तिक सुख की पूर्ण रूप से प्राप्ति कराने वाली है।

समाधि की उपर्युक्त क्रमशः प्रारम्भिक और अन्तिम अवस्थायें हैं। विभिन्न साधनों से समाधि की स्थिति प्राप्त होने से समाधि के भी अनेक प्रकार हैं-

1. ध्यान-योग-समाधि 2. नाद-योग-समाधि 3. मंत्रयोग-समाधि 4. लययोग-समाधि 5. भक्तियोग-समाधि 6. राजयोग-समाधि

1. **ध्यानयोगसमाधि** - यह समाधि की प्रारम्भिक अवस्था है। ध्यान की परिपक्वता के बिना समाधि नहीं हो सकती। इसीलिये इस साधना में मन को ध्येय विशेष पर केन्द्रित कर ध्यान की सिद्धि प्राप्त करनी चाहिये। ध्यान की सिद्धि से मन दोष-रहित होता है जो साधक को पापों से मुक्त करता है। घेरण्ड संहिता में इस सम्बन्ध में बताया है कि-

शास्त्रवर्णी मुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत् ।  
विनुब्रह्म सकृददृष्ट्वा मनस्त्रनियोजयेत् ॥

खमध्ये कुरुचात्मानं आत्ममध्ये च खं कुरु ।  
 आत्मानं खमयं दृष्ट्वा न किंचदपि बाध्यते ॥  
 सदानन्दमयो भूत्वा समाधिस्यो भवेन्नरः ।

अर्थात् शाम्भवी मुद्रा करके प्रथम आत्मा का प्रत्यक्ष करें और बिन्दुमय ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए मन को बिन्दु में लगा दें । तत्पश्चात् मस्तक में विद्यमान ब्रह्मलोकमय आकाश (सहस्रार) के मध्य में आत्मा को ले जायें, जीवात्मा में आकाश (सहस्रार) को लय करें और परमात्मा में जीवात्मा का लय करें इससे योगी सदानन्दमय एवं समाधि की स्थिति को प्राप्त करता है ।

2. नादयोगसमाधि - हठयोग समाधि को ही नादयोग समाधि कहते हैं । मन को शरीर में स्थित अनाहत शब्द से पूरे “नाद” में लीन कर लेना ही नादयोग समाधि है । मन जब नाद के अक्षर में लीन होता है तब उस स्थिति में निःशब्द समाधि रूप परमपद की प्राप्ति हो जाती है । नादयोग-समाधि के सम्बन्ध में घेरण्ड संहिता में कहा है-

साधनात् खेचरीमुद्रा रसनोर्ध्वगतासदा ।  
 तदा समाधि सिद्धिःस्याद् हित्वा साधारण क्रियाम् ॥

अर्थात् खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुये जिह्वा को ऊर्ध्व की ओर (ब्रह्मरन्ध्र में) स्थित करें । इससे साधारण क्रियाओं के हटने पर जो समाधि सिद्ध होती है, वही नादयोग समाधि है । इस प्रकार हठयोग साधना से प्राप्त हुई समाधि को “महाबोध” समाधि भी कहते हैं ।

3. मंत्रयोगसमाधि - मन को श्वास-प्रश्वास के साथ लय कर लेना मंत्रयोग समाधि कहलाती है । नित्य प्रति प्रत्येक मनुष्य इक्कीस हजार छः सौ बार श्वास लेता है । श्वास “सकार” ध्वनि के साथ बाहर निकलती है तथा “हकार” ध्वनि के साथ अन्दर आती है । इस प्रकार “सकार” और “हकार” काक्रम चलते-चलते “सोऽहं” और “हंस” दोनों के ही श्रवण का भान होता है । दोनों में कोई भेद भी नहीं । जो साधक नित्य प्रति इक्कीस हजार छः सौ संख्या में “हंस” का जाप करता है वह “सोऽहम्” रूप ही हो जाता है । इस प्रकार मंत्रयोग की समाधि को “महाभाव” समाधि भी कहते हैं । वाल्मीकि के पूर्व जन्म की कथा इसी प्रसंग से जुड़ी है जब नारद मुनि ने रत्नाकर डाकू को “राम” शब्द का उच्चारण न कर पाने पर उसकी प्रवृत्ति तथा उसके पेशे को देखते हुये “मरा” का लगातार जप करने की सलाह दी । वही रत्नाकर आगे चलकर मरा-मरा से राम-राम कहने वाला महामुनि वाल्मीकि बना ।

4. लययोगसमाधि - नाभि कन्द में कुण्डलिनी सुषुम्णा नाड़ी का मार्ग बन्द करके साढ़े तीन कुण्डल मारे सुप्तावस्था में रहती है । शरीर में स्थित कुण्डलिनी “शक्ति” का प्रतीक है । यौगिक साधना से कुण्डलिनी-शक्ति को जाग्रत कर षट्चक्रों का भेदन करते हुये सहस्रार में स्थित ‘शिव’ से उसका लय होना ही लययोग-समाधि का स्वरूप है । घेरण्ड-संहिता में लययोग समाधि के सम्बन्ध में कहा है-

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयंशक्तिमयोभवेत् ।  
 सुश्रृंगाररसेनैव विहरेत् परमात्मनि ॥  
 आनन्दमयः सम्भूय ऐक्यं ब्रह्मणि संभवेत् ।  
 अहं ब्रह्मेति वादैतं समाधिस्तेन जायते ॥

अर्थात् योनिमुद्रा का साधन करके योगी स्वयं में शक्ति की भावना और परमात्मा में पुरुष की भावना करे । फिर यह भावना करे कि मुझ में और परमात्मा में शक्ति और पुरुष रूप में बिहार हो रहा है । फिर आनन्दमय ऐक्य स्थापित करता हुआ यह चिन्तन करें कि ‘मैं अद्वैत ब्रह्म हूँ ।’ इससे जो समाधि होती है उसे लय योग समाधि कहते हैं । लययोग से प्राप्त समाधि को ‘महालय’ समाधि भी कहते हैं ।

5. भक्तियोगसमाधि - जब साधक इष्टदेव की भक्ति में अपने चित्त को लगा देता है उस स्थिति में उसे अपने शरीर का भी कोई ज्ञान नहीं रहता । अर्थात् वह बाह्य विषयों से सर्वथा पृथक् संज्ञाशून्य हो जाता है । शरीर पुलकित हो जाता है और आनन्द के आँसू बहने लगते हैं । वह स्थिति भक्तियोग समाधि की है । घेरण्ड संहिता में भी इस समाधि के सम्बन्ध में कहा है-

स्वकीय हृदये ध्यायेदिष्टदेव स्वरूपकम् ।  
 चिन्तयेद् भक्तियोगेन परमाहाद पूर्वकम् ॥  
 आनन्दाश्रु पुलकेन दशाभावः प्रजायते ।  
 समाधिः सम्भवेत्तेन सम्भवेच्चमनोन्मनि ॥

अर्थात् अपने हृदय में परम आह्लाद सहित भक्तियोग के द्वारा इष्टदेव के स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये । इससे आनन्द के आँसू बहने लगते हैं और शरीर पुलकायमान होता है तथा मन में उन्मनी भाव और एकाग्रता आकर ब्रह्म से साक्षात्कार होता है यह भक्तियोग समाधि कहलाती है ।

6. राजयोगसमाधि - मन बड़ा चंचल है । यौगिक क्रियाओं से मन की चंचल वृत्तियों पर नियंत्रण स्थापित कर उसे निरुद्ध करके आत्मा में लय करें तथा आत्मा को परमात्मा में लय कर दें । निरुद्ध मन का आत्मा के साथ तथा आत्मा का अखण्ड रूप से परमात्मा के साथ मिलन ही ‘राजयोग’ समाधि है । घेरण्ड संहिता में इस समाधि का वर्णन इस रूप में मिलता है-

मनोमूर्च्छी समासाद्य मन आत्मनियोजयेत् ।  
 परात्मनः समायोगात् समाधिः समवानुयात् ॥

अर्थात् मनोमूर्च्छी कुम्भक करता हुआ साधक मन को एकाग्र करके ब्रह्म में लगावे । इस प्रकार परमात्मा के साथ समायोग सम्मिलित होने को ‘राजयोग-समाधि’ कहते हैं ।

## नाद-विन्दु-साधना

नाद-साधना वस्तुतः ध्वनि-विज्ञान है। इसका सिद्धान्त है कि पूरा विश्व एक नाद पर आधारित है। अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ध्वनि सिद्धान्तों का रचनात्मक रूप है। ये ध्वनियां केवल वाह्य वातावरण में ही नहीं, वरन् हमारे शरीर में भी चेतना के विभिन्न स्तरों पर ध्वनि तरंगे हैं। उनके मिश्रण तथा अदल-बदल से शरीर निर्मित होता है। नादयोग के अनुसार प्रारम्भ में केवल एक पवित्र ध्वनि ‘ऊँ’ की थी। इसके पश्चात् ध्वनि तरंगों के द्वारा ब्रह्माण्ड की रचना हुई।

भारतीय आध्यात्मिक साधना की सभी पद्धतियों ने सर्व सम्मति से ‘ऊँ’ को अति प्राचीन काल से ही परमात्मा का अद्वितीय ध्वनि प्रतीक माना है। चाहे विविध साधना मार्गों में वह जिस किसी भी पवित्र नाम से अभिहित किया जाता है किन्तु इसे सभी प्रकार की विशिष्ट ध्वनियों का मूल स्रोत माना जाता है। यह वेदों का आधार है। इसमें वेदों की आत्मा और उसका वास्तविक अर्थ निहित है। इस ‘ऊँ’ के सम्बन्ध में महायोगी गुरु गोरखनाथ जी कहते हैं-

अलेष लेषंत अदेष देषंत अरस-परस ते दरस जाणी ।  
सुनि गरजंत बाजंत नादं अलेष लेषंत ते निज प्रवाणी ॥

अखल निरंजन अर्थात् ‘ऊँ’ शून्य पद में स्थित परब्रह्म परशिव अक्षर है। वह वर्णन में नहीं आता, वह नेति-नेति शब्द द्वारा श्रुति में प्रतिपादित है। वह निराकार है, उसे चक्षु आदि इन्द्रियों से देखा नहीं जा सकता है। वह ज्ञान चक्षु द्वारा आभ्यन्तरिक अनुशीलन में दर्शनीय है, ब्रह्मरन्ध्र में, सहस्रार में अनाहतनाद का श्रवण करते हुए योगी उसकी महिमा और व्यापकता का शब्दांकन करते हैं। वे वर्णनातीत परमब्रह्म का निरूपण करते हैं, पर यह निरूपण उनकी परमात्म अनुभूति का ही परम फल है, यह निर्विवाद है, समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक ब्रह्म पिण्ड में अनुभव संवेद्य है। परब्रह्म का साक्षात्कार, स्वरूप चिन्तन अनुभव गम्य है।

इस सामान्य ध्वनि रूप में शक्तियुक्त परमात्मा की आत्मा अभिव्यक्ति को “अनाहतनाद” कहा जाता है, क्योंकि यह एक ऐसी ध्वनि है जो किसी प्रकार के आघात या रगड़ से नहीं उत्पन्न होती और न ही यह विभिन्न भागों में विभाजित ही हो सकती है। यह अनादि-अनन्त एवं पूर्ण है। यह उच्चारण के लिये नहीं वरन् मन की एकाग्रता के अभ्यास के द्वारा परिलक्षित किये जाने के लिये है। प्रत्येक उच्चारित ध्वनि स्वर-यंत्रियों के आघात से उत्पन्न होती है, वह विभाजित होती है किन्तु ‘ऊँ’ सभी विशिष्ट खण्डित ध्वनियों के मूल में निहित सर्व व्यापक अखण्ड ध्वनि है। परमात्मा के इस ध्वनि प्रतीक के अनुसन्धान को ही नादानुसन्धान कहते हैं। यह एक अन्यन्त महत्वपूर्ण और प्रभावशाली योग पद्धति है। ध्यानबिन्दुपनिषद में कहा गया है कि-

बीजाक्षरं परं बिन्दु नादस्तस्योपरि स्थितम् ।  
सशब्देचाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम् ॥

अनाहतं तु यच्छन्दस्तस्य शब्दस्य यत्परम् ।  
तत्परं विन्दते यस्तु स योगी छिन्न-संशयः ॥

बीजाक्षर परम बिन्दु है और उसके ऊपर नाद की स्थिति है, वह नाद (शब्द) अक्षर में लय हो जाता है तब शब्द रहित परम पद का रूप होता है । अनाहत शब्द से भी परे जो शब्द है, उसके पाने से ही योगी के संशय की निश्चित समाप्ति होती है । गोरखबानी में महायोगी गोरखनाथ जी कहते हैं-

नाद-नाद सब कोई कहे, नादहि लै कोइ विरला रहे ।  
नाद बिन्दु है फीकी सिला, जिहि साध्या ते सिधै मिला ॥

नाद का अनुसन्धान साक्षात् “ऊँ” शब्द ब्रह्म परमात्मा की उपासना है । केवल नाद-नाद रटने से साधना की सिद्धि नहीं होती, उसमें मन को सम्पूर्ण रूप से एकाग्र कर, अमनस्क कर चित्तवृत्ति का पूर्ण निरोध कर नाद की अन्तिम अवस्था, शब्दातीत अवस्था में प्रवाहित अनाहत में अपने आत्मस्वरूप को लयकर परमात्मा में तादात्म्य किया जाता है । यह साधना कोई विरला योगी ही कर पाता है । नाद-बिन्दु दोनों सूखे पाषाण खण्ड के समान हैं, पर उनकी साधना से आत्मरस परमामृत तत्त्व के बोध में योगसाधना सिद्धावस्था में समाहित अथवा स्वरूपस्थ हो जाता है । योगिराज भर्तृहरिनाथजी कहते भी हैं-

नाद विंद बजाइले दोऊ पूरिले अनहद बाजा ।  
एकंतिका वासा सोधिले भरथरी कहै गोरष मछिंद्र का दासा ॥

महायोगेश्वर परम सदगुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी के सेवक महायोगी गुरु गोरखनाथजी का योगिराज भर्तृहरि के प्रति योगोपदेश है कि हे भर्तृहरि! प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों के मल का शोधन कर तथा चित्तवृत्ति को निरूद्ध कर नाद-बिन्दु की साधना में तत्पर हो जाना चाहिए । हे भर्तृहरि इस तरह ना-बिन्दु की साधना में निरन्तर एकान्त स्थान में निवास कर अथवा सहज शून्य गगनस्थ सहस्रार में आत्मा का लय कर सिद्धावस्था में रमण करना चाहिए । नादबिन्दुसाधना ही पूर्ण योग-सिद्धि का साधन-पथ है ।

अनाहत नाद साधक के हृदय में अन्तरतम प्रदेश के बिना किसी प्रयत्न के सतत् रूप से विद्यमान रहता है । परमात्मा निश्चय ही इस रूप में अपनी गौरवमयी उपस्थिति प्रकट करता है । यह शब्द ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्म की शब्द या ध्वनि रूप में अभिव्यक्ति । योग-साधना के शब्द (नाद) साधना के महत्त्व के सम्बन्ध में महायोगी गोरक्षनाथजी कहते हैं-

सबदहिं ताला सबदहिं कूंची सबदहिंसबद जगाया ।  
सबदहिं सबद सूं परचा हूआ सबदहिं सबद समाया ॥

योग-साधना की दृष्टि से शब्द (नाद) ही ताला है क्योंकि यह परमात्मतत्त्व को गुप्त रखता है । शब्द की धारा ही

सूक्ष्म परमात्मतत्त्व पर स्थूल आवरणों को बाँध कर सृष्टि का संयोजन तथा निर्माण करती है। मूलअधिष्ठान तक पहुँचने के लिये शब्द की धार पकड़कर वापस आना पड़ता है। इसलिये शब्द कुंजी भी है। इसके द्वारा परमात्म रहस्य अभिव्यक्त होता है। गुरु-उपदेश से ही शब्द (नाद) का जागरण होता है। जीव आत्म शब्द का स्थूल और सूक्ष्म स्तर क्रम से श्रवण कर अमृतपद में प्रतिष्ठित हो जाता है। नादानुसन्धान के फलस्वरूप अनाहत ध्वनि सुनाई पड़ती है। स्थूल शब्द का सूक्ष्म शब्द में यही लय है। प्राणवायु के सुषुम्ना-पथ से ब्रह्मरन्ध में स्थिर होने पर घण्टे, वंशी, वीणा, भ्रमरादि के नाद की तरह सूक्ष्मतर नाद सुनाई पड़ते हैं, इसके उपरान्त साधक की समाधि अवस्था आती है। प्राण ब्रह्मरन्ध में स्थित हो जाता है और योगी शून्य पद में आत्मामृतपान कर शिव का साक्षत्कार लाभ करता है। रहित शब्द तत्त्व के रूप में ‘ऊँ’ अथवा ब्रह्म का प्रकाश होने पर जीवात्मा-परमात्मा में अभेद हो उठता है।

नाद का अनुसन्धान वस्तुतः ब्रह्म का हृदय में अन्वेषण है। एक साधक के लिये आवश्यक है कि वह अपना ध्यान स्थिरता पूर्वक इस नाद पर केन्द्रित करे जिसकी धारणा प्रारम्भिक स्थिति में अस्पष्ट होती है, हृदय इच्छाओं, पूर्वकृत कर्मों के प्रभावों तथा अनेक प्रकार की भावनाओं और प्रवृत्तियों का केन्द्र होता है जिनसे अनेक प्रकार की हलचलें उत्पन्न होती हैं। फलस्वरूप सामान्य जीवन-क्रम में यह नाद न तो सुना जा सकता है और न ही अनुभव किया जा सकता है। इन कठिनाईयों को दूर करने के लिये सर्तकता और संयम पूर्वक अभ्यास करना चाहिए। हृदय के भीतर शुद्ध और शान्त वातावरण उत्पन्न करना चाहिए और ध्यान को सतत् रूप से “नाद” की ओर केन्द्रित करने की चेष्टा करनी चाहिए।

हृदय के भीतर “नाद” अनुसन्धान तथा उस पर ध्यान के केन्द्रीकरण के लिये सर्व प्रथम प्राणायाम द्वारा प्राण का संयम करना चाहिए। कहा भी है-

पवन ही जोग, पवन ही भोग, पवन ही हरे छतीसों रोग ।  
या पवन का जो जानै भेव, सो आपै करता आपै देव ॥

योग-साधना का एक प्रमुख अंग पवन का संयम है। प्राणायाम के साधन से योग-भोग दोनों में निपुणता और सिद्धि मिलती है जिसका शरीर प्राण का संयम करने से स्वस्थ और निर्विकार रहता है उसके सारे रोग नष्ट हो जाते हैं। जो साधक प्राण को अपने शरीर में स्थिर रखता है और इसका रहस्य समझ लेता है वह सिद्ध हो जाता है। वह सृष्टि रचने की शक्ति रखता है और शिव स्वरूप हो जाता है। गोरखबाजी में कहा भी है-

अवधू दंग को रहिवा उनमने रहिवा ज्यूं बाजवा अनहद तूरं ।  
गगन मंडल में तेज चमकै चांद नहीं तहां सूरं ॥

तथा

अवधू सहस्र नाड़ी पवन चलैगा, कोटि झामंकै नादं ।

बहतरि चंदा बाई सोष्या किरणि प्रगटी जब आदं । ।

हे अवधूत! प्राण का संयम करना चाहिए। दम अथवा प्राण का संयम प्राणायाम के अभ्यास से ही सिद्ध होता है। नवद्वार-मुख, नेत्र, नासारन्ध्र, कान, उपस्थ, गुदा-तो प्रत्यक्ष हैं पर ब्रह्मरन्ध्र दशवां द्वार अप्रत्यक्ष है। दशम द्वार में ही योगी उन्मन होता है। नाद विन्दु के मेल से उत्पन्न अनाहत नाद का श्रवण कर वह निराकार पर ब्रह्मशिव के प्रकाश का ब्रह्मरन्ध्र में दर्शन करता है। ब्रह्मरन्ध्र में सूर्य और चन्द्रमा की ज्योति के बिना ही अलख निरंजन, चिन्मय तत्व भासित होता है।

प्राणायाम के अभ्यास के बाद नाद अनुसन्धान के लिये प्रणव जप करना चाहिए। अनाहत नाद के अनुश्रवण में आंख, और कान सतर्कतापूर्वक बन्द करके प्रणव को नियमित और दीर्घ उच्चारणा (उदाहरणार्थ अ-अ-उ-म-म-) तथा इस एक स्वर उच्चारित ध्वनि पर ध्यान की एकाग्रता का अभ्यास साधना की प्रक्रिया में अत्यधिक उपयोगी है। रात्रि की नीवरता तथा पर्वत-गुहाद्वारों एवं निर्जन वन-प्रदेशों की शान्ति इसके लिये उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करते हैं। साधक को किसी उपयुक्त स्थान में सतर्क मुद्रा एवं शान्त मनः स्थिति में बैठ जाना चाहिए। सभी प्रकार की बाट्य ध्वनियों को कान में प्रविष्ट होने से रोक देना चाहिए 'ऊँ' के मधुर एवं संगीतमय ध्वनि से सम्पूर्ण वातावरण को गुंजायमान कर देना चाहिए और इस नीरव ध्वनि प्रवाह पर अपना ध्यान पूर्णतः केन्द्रित कर देना चाहिए। फिर उसे चिन्तन शक्ति द्वारा हृदय में स्थित परमतत्व से इस नाद की अभिन्नता स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए और इसी रूप में परमात्मा का ध्यान अधिक गहराई से करना चाहिए। यह प्रक्रिया एक ही साथ प्रत्याहार, धारणा और ध्यान को समेट लेती है। यह ध्वनि क्रमशः सूक्ष्मतर और मधुरतर तथा सम्पूर्ण चेतना से अभिन्नतर होती जाती है। अन्ततः ध्वनि और चेतनता एक हो जाती है। अहं-इदम् का भेद मिट जाता है और एक ही आनन्दमयी चेतनता रह जाती है। जब यह चेतना के दिव्य स्तर तक पहुँच जाती है तब साधक परमत्व शिव से पूर्णतः मिल कर एक हो जाता है।

धन जोवन की करै न आस, चित्त न राखै कामिनिं पास ।  
नाद विंद जाके घटि जरै, ताकी सेवा पारवती करै ।

शक्ति ही नाद है, शिव ही बिन्दु है, कुण्डलिनी जागृत होकर जब शून्य पद में परमशिव का योग पाती है, तब योगी अमृतरस का पान करता है। कहा जाता है कि इच्छा ही नाद है, सगुण या परमात्मा में इच्छा ही स्पन्द है, कम्पन है इसका स्थूल कर्ण से नहीं बौद्धिक ज्ञान से आस्वादन होता है। इच्छा के साथ जो क्रिया है, वह बिन्दु है। शिव की शक्ति से नाद और नाद से बिन्दु उत्पन्न होता है। शिवस्वरूप बिन्दु और बीज-स्वरूप शक्ति का सम्बन्ध नाद है। बिन्दु के स्वाद और नादानुसन्धान से योगी जीवन्मुक्त होकर सिद्ध देह में स्थित रहता है।

गोरक्षसिद्धान्त संग्रह के अनुसार प्राणायाम के अभ्यास से ब्रह्मग्रन्थि का भेदन हो जाता है तब शरीर के भीतर हृदयाकाश से उत्पन्न आभूषण की सी विचित्र आनन्दायिनी अनाहत ध्वनि सुनाई पड़ती है। उस समय साधक के शरीर से दिव्य गन्ध निकलती है। वह दिव्य चक्र युक्त हो जाता है। इस स्थिति में साधक के हृदय में योग ज्ञान का प्रकाश भर

जाता है। यह योग साधना की दिशा में प्राणायाम, मुद्राबन्ध, चक्रभेदन और कुण्डलिनी के प्रबोधन द्वारा आरम्भावस्था कहलाती है।

ब्रह्म-ग्रन्थिभवेद्भिन्ना ह्यानन्दःशून्य सम्भवः ।  
विचित्रः क्वणको देहेऽनाहतः श्रूयते ध्वनिः ॥ ॥  
दिव्यं गन्धो दिव्यचक्षुस्तेजस्वी स्पादरोगवान् ।  
सम्पूर्णं हृदयः शून्यं आरम्भे योगवान्भवेत् ॥

दूसरी घटावस्था है, इसमें प्राण वायु अपानवायु, नाद और बिन्दु को सम्मिलित करके विशुद्ध चक्र में प्रवेश करती है। उस समय आसन सिद्ध योगी योग-ज्ञान-सम्पन्न तथा देवता के समान हो जाता है, तब विष्णु ग्रन्थि का भास होता है और इस तरह अतिशून्य कंठदेश में स्थित विशुद्ध चक्र का भेदन हो जाता है, तब परमानन्द की प्राप्ति कराने वाली भेरी का सा शब्द सुनाई पड़ता है जिसमें योगी पूर्ण निमग्न हो उठता है।

द्वितीयायां घटीकृत्य वायुर्भवति मध्यगः ।  
दृढासनो भवेद्योगी ज्ञानी देवसमस्तथा ॥ ॥  
विष्णुग्रन्थिर्यदा भिन्ना परमानन्द सूचकः ।  
अतिशून्यं विभेदश्च भेरीशावस्तथा भवेत् ॥

तीसरी पश्चिम अवस्था है, इसमें जब प्राणवायु विशुद्ध चक्र का भेदन कर सम्पूर्ण सिद्धियों के केन्द्र महाशून्य अर्थात भौहों के मध्यवती आकाश में प्रवेश करती है, तब मर्दल नामक बाद्य-विशेष की सी ध्वनि सुनाई पड़ती है, इसके बाद चित्तानन्द को जीत लेने पर अमनस्क अवस्था उन्मनी समाधि की प्राप्ति हो जाने पर योगी को सहजानन्द की प्राप्ति हो जाती है, जिससे दोष (चित्त के विकार अथवा मल) दुःख, सुख, निद्रा, बुद्धापा और मृत्यु से योगी छूट जाता है।

तृतीयायां ततो भित्वा विहायो मर्दल ध्वनिः ।  
महाशून्यं तदायाति सर्वसिद्धिसमाश्रयम् ॥ ॥  
चित्तानन्दं ततो जिह्वा सहजानन्द सम्भवः ।  
दोषदुःख-क्षुधानिद्राजरा मृत्युं विवर्जितः ।

नाद की चौथी अवस्था निष्पत्ति है। इसमें जब प्राणवायु रूद्र ग्रन्थि भेदन करके ब्रह्मरन्ध्र में जाती है, तब उसे निष्पत्ति-अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में वंशी और वीणा का सा शब्द सुनाई पड़ता है।

रूद्रग्रन्थिं ततो भित्वा शर्वपीठगतोऽनिलः ।  
निष्पत्तौ वैणवः शब्दः क्वणवीणाक्वणो भवेत् ॥

नादानुसन्धान का अभ्यास करने वाले साधक को पहले अनेक प्रकार के शब्दों के श्रवण का अनुभव होता है और फिर सूक्ष्मातिसूक्ष्म शब्द सुनने की क्षमता आ जाती है। समुद्र, मेघ, भेरी आदि के श्रवण का अभ्यास बढ़ने पर अन्त में

वंशी, वीणा, भ्रमर गुंजनादि सुनाई देने लगता है। जब मेघ गर्जनादि जैसी महान ध्वनि सुनाई देने लगे, तब सूक्ष्मातिसूक्ष्म ध्वनि के सुनने का अभ्यास करें और जब वह भी दृढ़ हो जाय, तब सूक्ष्मनाद को छोड़कर स्थूल नाद के और स्थूल नाद को छोड़कर सूक्ष्म नाद के श्रवण का अभ्यास करें। इस प्रकार विभिन्न नादों को सुनते-सुनते जिस नाद में मन लगे, उसी में चित्त को लगा ले और फिर किसी अन्य नाद में चित्त न लगावे तो चित्त का लय उसी नाद में हो जाता है और फिर वह अन्यत्र किसी विषय की ओर आकर्षित नहीं होता। भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास करते हुए निम्न स्थितियों में क्रमशः नाद साधना का अभ्यास सरलता से किया जा सकता है।

**भ्रामरीप्राणायाम** - किसी आसन में बैठकर आंख बन्द करके दोनों तर्जनी ऊँगलियों से कानों को बन्द कर लेना चाहिए। गहरी श्वास अन्दर रोकें, फिर गले से भ्रमर की तरह आवाज निकालते हुए धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए। जब तक पूरी श्वास बाहर न निकल जावे तब तक भ्रमर की सी आवाज करते रहें। रेचक नाक से करना चाहिए और मुँह बन्द रखना चाहिए।

#### नाद-साधना की चार स्थितियाँ -

**प्रथमस्थिति** - गहरी श्वास लीजिए। श्वास छोड़ते समय धीरे-धीरे भ्रमर की तरह आवाज कीजिए। गले में विशुद्ध चक्र पर आवाज पर ध्यान कीजिए, जब तक प्रथम आवाज की उत्पत्ति न हो तब तक इसी ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

**द्वितीयस्थिति** - द्वितीय स्थिति में तर्जनी अंगुलियों से कानों को बन्द करे। श्वास लीजिए और पहले की तरह श्वास छोड़ते समय भ्रमर की तरह आवाज कीजिए। प्रथम आवाज के बाद द्वितीय आवाज का पता लगाने का प्रयास कीजिए जो इस आवाज के पार्श्व में है। प्रथम अवस्था में यदि “ऊँ” का उच्चारण करेंगे तो थोड़ी सर्तकता रखने पर चिड़ियों की सी धीमी आवाज सुनाई पड़ती है।

**तृतीयस्थिति** - तृतीय स्थिति में कानों को बन्द रखिए। आवाज मुँह से न करके पहले वाली अवाज को सुनने का प्रयत्न कीजिए। धीरे-धीरे अभ्यास से आप को प्रथम आवाज समीप आती अनुभव होगी। यह प्रथम ध्वनि है। फिर पार्श्व में दूसरी आवाज का अनुभव कीजिए। यह दूसरी ध्वनि होगी।

**चतुर्थस्थिति** - कान बन्द मत कीजिए और न ही मुँह से आवाज निकालें। रात्रि की नीरवता में अथवा प्रातः काल एकान्त में किसी आराम दायक आसन में बैठक कर प्रथम ध्वनि को पकड़ने का अभ्यास कीजिए। पहली आवाज सुनिए और उसे तेज होने दीजिए, तब द्वितीय मन्द ध्वनि उत्पन्न होगी। उस पर ध्यान कीजिए और प्रथम ध्वनि पर ध्यान करना बन्द कर दीजिए। द्वितीय आवाज को तेज होने दीजिए। तत्पश्चात् तृतीय ध्वनि निर्मित होगी। इस तरह ध्वनियों पर ध्यान करना चाहिए। इस तरह नाद योग का अभ्यास करने से मस्तिष्क की निराशा दूर होती है, ध्यान सफल होता है तथा मन शान्त होता है।

नाद योग से लाभः -

- (1) नादानुसंधानसमाधिभाजाम् ।  
 योगीश्वराणां हृदि वर्धमानम् ॥  
 आनन्दमेकं वचसामगम्यम् ।  
 जानीत तं श्रीगुरुनाथ एकः ॥  
 कर्णो पिघाय हस्ताभ्यां यं शृणोति ध्वनिं मुनिः ।  
 तत्रचित्तं स्थिरीकुर्याद्यत्थरपदं ब्रजेत् ॥  
 अभ्यस्यमानो नादोऽयं ।  
 पक्षाद्विक्षेपमखिलं जित्वा योगी सुखी भवेत् ॥ (हठयोग प्रदीपिका)

नाद के अनुसन्धान से जो समाधि होती है, उसके कर्ता योगेश्वरो के हृदय में बदला हुआ एक आनन्द होता है जो कि वाणी से अगम्य है, उसे एक मात्र श्री गोरखनाथ जी ही जानते हैं। हाथों से कानों को ढककर जो मुनि ध्वनि का श्रवण करता है वह वहाँ चित्त को स्थिर करके स्थिर पद को प्राप्त हो जाता है। अभ्यास किया हुआ यह नाद बाह्य शब्द का आवरण करता है, जिससे योगी पल भर में सब विक्षेपों को जीतकर सुखी हो जाता है।

- (2) बद्धं तु नादबंधेन मनः संत्यक्तचापलम् ।  
 प्रयाति सुरतां स्थैर्यं छिन्नपक्षः खगो यथा ॥  
 सर्वचिंता परित्यज्य सावधानेन चेतसा ।  
 नाद एवानुसंधेयो योग सामग्रज्यमिच्छता ॥

शब्दादि विषयों के महान उद्यान में मद से उन्मत्त हुआ जो मन हाथी के समान स्वच्छन्द विचरण करता है उसका वश में आना बहुत कठिन है। परन्तु नाद रूपी अंकुश द्वारा उसे वश में किया जा सकता है, फिर वह मन विषयों की ओर न दौड़ पर स्थिर हो जाता है। इसलिये योगरूपी सामग्रज्य की आकांक्षा करने वाले साधक को नाद के अनुसन्धान में तत्पर होना चाहिए।

सदा नादानुसन्धानात्कीयन्ते पापसंचयाः ।  
 निरंजने विलीयते निश्चितं चित्तमारूप्तो ॥

(नाद के अनुसन्धान से सदा सचित पापों का क्षय होता है)

## अजपा-जप

भारतीय आध्यात्मिक साधना में जप का प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसका विकास समय-समय पर भारत के महान् सन्तों और योगियों ने विभिन्न युगों में अपने अनुभवों से किया है। जप उतना ही प्राचीन है, जितना भारतीय संस्कृति। उपनिषदों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में इनका विवरण किसी न किसी रूप में प्राप्त होता है। जप कोई भी हो नित्य दोषों को दूर कर चित्त शुद्ध करता है। जप अनेक प्रकार के होते हैं। मुख्य जप इस प्रकार हैं-

**नित्य जपः** - गुरु मंत्र का प्रतिदिन प्रातः सायं जप करना नित्य जप कहलाता है।

**वैखरी जपः** - मंत्रों का जोर से उच्चारण करते हुए किया जाने वाला जप वैखरी जप कहलाता है।

**उपांशु जपः** - मंत्रों को बिना जोर से बोले मुँह के अन्दर ही जप करना उपांशु जप कहलाता है।

**मानस जपः** - मन से मंत्रों का उच्चारण करना मानस जप कहलाता है।

**अजपा जपः** - श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया पर अपनी चेतना को केन्द्रित करके किया जाने वाला जप अजपा-जप कहलाता है। यह जप सबसे सरल और उच्च कोटि का माना गया है।

योग में चित्त शुद्धि की बहुत सी साधनाएं हैं। परन्तु हर साधना का प्रभाव अलग-अलग होता है अर्थात् कुछ साधनाएं ऐसी हैं जिन्हें साधारण व्यक्ति नहीं सह सकता, इसलिये प्रत्येक को या चाहे जिसको शक्तिपात नहीं कराया जा सकता, क्योंकि मनुष्य की प्रकृति तीन प्रकार की होती है-सात्त्विक, राजसिक और तामसिक।

इन तीनों प्रकृतियों के मनुष्यों के लिये आध्यात्मिक क्षेत्र में साधनायें भी अलग-अलग हैं। यदि तामसिक प्रकृति के मनुष्य को सात्त्विक प्रकृति की साधना करवायी जायेगी या सात्त्विक प्रकृति के मनुष्य को तामसिक प्रकृति की साधनायें करवायी जाय तो वह निश्चित पागल या रोगी हो जायेगा। परन्तु अजपा एक ऐसी साधना है जो हर प्रकृति के लिये उपयुक्त है। यह जप अपने आप में एक पूर्ण साधना है। गोरक्षशतक में महायोगी गुरु गोरक्षनाथ जी ने स्वयं कहा है कि-

हकारेण बर्हिर्याति सकारेण विशेषं पुनः।  
हंसहंसेत्यमुं मंत्रं जीवो जपति सर्वदा ॥ १ ॥  
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी ।  
अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
कुण्डलिन्यां समुद्भूता गायत्री प्राणघारिणी ।  
प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेत्ति स योगवित् ॥ २ ॥

अर्थात् प्राण-वायु के हकार की ध्वनि से बाहर जाने पर और सकार की ध्वनि से भीतर आने पर हंस-हंस मंत्र की उत्पत्ति शरीर में 21600 बार होती है। इस हंस मंत्र से सोऽहं शब्द की उत्पत्ति होती है। हंस मंत्र का जप ही अजपा गायत्री है। यह योगियों को मोक्ष प्रदान करती है। इसके संकल्प मात्र से उसके समस्त पाप नष्ट होते हैं। कुण्डलिनी से उत्पन्न यह गायत्री, प्राण-विद्या महाविद्या है। गोरखबानी में महायोगी कहते हैं-

अजपा जपै सुनि मन धरै, पांचो इन्द्री निग्रह करे ।  
ब्रह्म अग्नि मैं होमै काया, तास महादेव बन्दे पाया ॥

अर्थात् जो योग साधक अजपा जप करता है जिसकी चित्तवृत्ति तेलधारावत् अनवरत “ऊँ” “सोऽहं” तथा परमात्मा के इष्ट नाम मंत्र के जप में लगी रहती है जिसका मन ब्रह्मरन्ध (शून्यवाद) में रमण करता है, अर्थात् ऊर्ध्वमुखी रहता है, जिसके इन्द्रिय समूह चंचलता को छोड़कर स्ववश रहते हैं, जो विनश्वर शरीर को ब्रह्मानुभूति रूपी अग्नि में परिशुद्ध कर देता है उस योगी की बन्दना साक्षात् भगवान शिव करते हैं।

वस्तुतः जब जीव श्वास लेता है तब “स” शब्द के साथ प्राणवायु पेट के अन्दर जाती है और “ह” शब्द के साथ बाहर निकलती है। एक व्यक्ति साधारण स्वरूप स्थिति में स्वभावतः प्रत्येक चौबीस घण्टे के भीतर 21600 बार श्वास लेता है। जैसा कि ब्रह्मविद्योपनिषद् में कहा गया है-

सहस्रमेकमयुतं षट् शतं चैव सर्वदा ।  
उच्चरन्पतितो हंसः सोऽहमित्यभिधीयते ॥

अर्थात् नित्य प्रति इक्कीस हजार छः सौ की संख्या में “हंस” का जप करने वाला साधक “सोऽहं” रूप हो जाता है।

एक आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी प्रत्येक श्वास पर ध्यान दे और उसके महत्त्व को समझे। श्वास प्रक्रिया के यमित-नियमित-दीर्घकालिक-अल्पकालिक करने के लिये किसी बाहरी प्रयत्न पर नहीं बल्कि श्वास प्रक्रिया पर ध्यान देना होता है। जिज्ञासु की कोशिश होनी चाहिए कि उसकी कोई भी श्वास कम से कम जाग्रत अवस्था में व्यर्थ न होने पाये। यही वह सत्य है जिसे प्रत्येक श्वास अव्यक्त रूप में उसके हृदय में ध्वनित करती है। यह अजपा-जप है। महायोगी गोरखनाथ जी कहते हैं कि अजपा की तुलना में कोई भी अन्य विद्या, कोई भी अन्य जप और कोई भी ज्ञान नहीं रखा जा सकता है। जैसा कि एक सन्त ने कहा भी है कि-

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहं-सोऽहं सुरता गाई ।  
छः सौ सहस्र इक्किसौ जाप, अनहद उपजै आपहि आप ॥

अजपा के नियमित अभ्यास से श्वास प्रक्रिया सामान्य होती है जो समाधि अवस्था में पहुँचाने में सहायक होती है।

हमारे इस भौतिक शरीर में दस प्रधान वायु हैं। हृदय देश में प्राण वायु उच्छ्वास और निःश्वास का संचालन करती है। यही प्राण वायु हकार की ध्वनि के साथ बाहर तथा सकार की ध्वनि के साथ भीतर आती है। गुदा देश में अपान वायु रेचक, पूरक, कुम्भक की सामर्थ्य से युक्त होती है। नाभिप्रदेश में समानवायु रहती है। यह जठराग्नि को दीप्ति करती है और भोजन के रूप में ग्रहण किये गये पदार्थों को रसयुक्त करती तथा पचाती है। व्यानवायु शरीर में व्याप्त नाड़ियों का शोधन कर कान्ति और तेज को बढ़ाती है। कंठ में उदान वायु रहती है। इसका कार्य वमन, भाषण और शरीर से प्राण का उत्क्रमण है। प्राणवायु शरीर में व्याप्त रह कर अंग-प्रत्यंग के संचालन में सहायता करती है। कूर्म वायु का कार्य आंखों की पलकों को खोलना और बन्द करना होता है। कृकल वायु का कार्य है डकार उत्पन्न करना तथा मूत्र बढ़ाना। देवदत्त वायु ज़ंभाई लेने में सहायता करती है तथा धनंजयवायु समस्त शरीर में व्याप्त रह कर अव्यक्तनाद उत्पन्न करती है- सिद्धसिद्धान्तपद्धति के अनुसार-

हकारः कीर्तिः सूर्यष्टकारश्चन्द्र उच्यते ।  
सूर्यचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते ॥

हमारी दाहिनी नासिका से होकर जाने वाली नाड़ी सूर्य अथवा पिंगला है तथा बायीं नासिका से होकर जाने वाली नाड़ी चन्द्र अथवा इडा है। स्वर विज्ञान के अनुसार जब इडा पिंगला दोनों नाड़ियां समान रूप से चलती हैं तो वह समय सभी प्रकार की आध्यात्मिक साधना अथवा शुभ कार्य के लिये उत्तम होता है।

अजपा में सर्वप्रथम आने-जाने वाली श्वास के प्रति चैतन्य रहना चाहिए। श्वास सहज नहीं रहेगी। स्वाभाविक श्वास रात्रि में भी रहती है। परन्तु वह अजपा नहीं है। सचेतन मन से आने-जाने वाली श्वास को देखना होगा कि श्वास कहाँ तक जा रही है। जब श्वास लेते हैं तो वायु नाभि तक जाती है तथा छोड़ते समय नाभि से आती है। इसे करने के लिए किसी आरामदायक आसन में बैठते हैं। अंगों को ढीला छोड़ कर गहरी श्वास लेते हैं। भीतर जाने वाली श्वास के साथ “सो” और आने वाली श्वास के साथ “ह” जोड़ते हैं। “सो” और “ह” के बीच मानसिक रूप से कोई अन्तर न आये। “ह” के बाद कुछ आराम की स्थिति में आते हैं। पुनः “सो” के साथ श्वास लेते हैं तथा “ह” के साथ छोड़ते हैं। यह “सोहं” की एक आवृत्ति है। कुछ समय पश्चात् अजपा बन्द करिये और शून्य में अपनी चेतना को ले जाकर चक्र पर ध्यान करिये, जो भी विचार आये उन्हें हटाकर केवल शून्य का ध्यान रखिये, कुछ देर बाद पुनः अजपा प्रारम्भ कीजिए। श्रीमद्भागवत् में भी अजपा के सन्दर्भ में स्पष्ट कहा गया है-

अपाने जुहवते प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।  
प्राणापानगती रूद्ध्या प्राणायामपरायणः ।  
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुहवति ।  
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥

अर्थात् कुछ साधक प्राण को अपान में मिलाते हैं और अन्य अपान को प्राण में, दूसरे प्राण को प्राण से ही मेल करते

हैं, अन्दर जाने वाली श्वास प्राण है तथा बाहर आने वाली अपान। “सो” प्राण का प्रतिनिधित्व करती है और “ह” अपान का सो को “ह” से जोड़ते हैं जिससे हँसो बनता है। कुछ ऐसे भी साधक हैं जो प्राण का मिलन प्राण से करते हैं।

अजपा के सतत अभ्यास से आत्मा ब्रह्म की एकता “जीव” और “शिव” की एकता का साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुभूत होता है। सभी प्रकार की विषय कामना, घृणा, ईर्ष्या, भय, चिन्ता, अनमनस्कता दूर हो जाती है और हृदय में आत्मपूर्णता की चेतना के आनन्द का अनुभव होता है। अजपा के अभ्यास की उच्चतर स्थिति में श्वास के ऊपर अधिक ध्यान देना आवश्यक नहीं रह जाता। आत्मा और ब्रह्म की आनन्दमयी एकता की भावना में श्वास पर केन्द्रित ध्यान क्रमशः लय हो जाता है। अहं की चेतना समाप्त हो जाती है और केवल एक ज्योति से प्रकाशित अभेदात्मक आनन्दमयी चेतना रह जाती है। इस प्रकार अजपा के अभ्यास से समाधि की प्राप्ति हो जाती है। गोरखबानी में गोरखनाथ जी कहते हैं -

पवनां रे तू जासी कौने बाटी ।  
जोगी अजपा जपै त्रिवेणी के घाटी ॥  
चंद गोग टीका करिलै, सूर करिले बाटी ।  
मूनी राजा लूगा धोवै, गंग जमुन की घाटी ॥

अर्थात् हे पवन (प्राण) तुम किस रास्ते जाओगे। त्रिवेणी (त्रिकुटी) में योगी अजपा जप कर रहा है। यह मार्ग बन्द है। चन्द्र और सूर्य नाड़ी से प्राण अवरुद्ध कर सुषुम्णा में प्राण को प्रवाहित कर इस शरीर रूपी कपड़े को धोता जा।

अजपा के सतत अभ्यास से साधक उच्चतर स्थिति में पहुँच कर सच्चिदानन्दमय हो जाता है। विभिन्न चरणों में इसका अभ्यास करके साधक वास्तविक शान्ति प्राप्त कर सकता है। अजपा का अभ्यास कुर्सी पर, जमीन पर या किसी आसन (पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन) में किया जा सकता है। अजपा के समय ध्यान के केन्द्र पर मस्तिष्क को एकाग्र करना चाहिए। यह ध्यान का केन्द्र आज्ञाचक, भ्रूमध्य, अनाहत चक्र या शरीर का कोई अन्य केन्द्र हो सकता है। अजपा में श्वास गहरी तथा आराम दायक होनी चाहिए। विभिन्न चरणों में सफलता पूर्वक अजपा अभ्यास इस प्रकार किया जा सकता है।

#### प्रथम चरण -

1. किसी आरामदायक आसन में बैठं कर आँखे बन्द करके पूर्णतः शान्ति सुख और आराम का अनुभव कीजिए तथा पेट के भीतर तथा बाहर जाने वाली श्वास पर अपने को केन्द्रित करें।
2. गहरी एवं आरामपूर्वक श्वास लेकर अनुभव करिये कि श्वास नाभि तक जाती है और बाहर जाने वाली श्वास नाभि से आती है।

3. अन्दर जाने वाली श्वास में “सो” और बाहर जाने वाली श्वास में “हं” को जोड़िये इस प्रकार श्वास-प्रश्वास के साथ “सोSHं बनता है।
4. एक आवृत्ति के बाद मानसिक शून्यता की स्थिति में आइए और अपनी चेतना को आज्ञा (भूमध्य) अथवा अनाहतचक्र (हृदयमध्य) पर एकाग्र करिये।
5. पुनः आने जाने वाली श्वास के साथ “सोSHं” का अभ्यास करिए। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद पूर्णता प्राप्त होने पर द्वितीय चरण में अभ्यास प्रारम्भ करें।

#### द्वितीय चरण -

1. प्रथम चरण का अभ्यास करते समय पहले श्वास लेते समय “सो” तथा बाहर निकालते समय “हं” को जोड़ते हैं जो “सोSHं” बनाता है। अब द्वितीय चरण में पहले श्वास “हं” के साथ बाहर निकालते हैं और फिर श्वास सो के साथ लेते हैं जो हंसो बनाता है।
2. एक आवृत्ति के बाद मानसिक शून्यता की स्थिति में आइए और चेतना को आज्ञाचक्र (भूमध्य) अथवा अनाहतचक्र (हृदयमध्य) पर एकाग्र कीजिए।
3. पुनः आने-जाने वाली श्वास के साथ हंसो का अभ्यास करिए। कुछ दिनों तक लगातार अभ्यास से पूर्णता प्राप्त होने पर तृतीय चरण में जाइए।

#### तृतीय चरण:-

1. किसी स्थिर आसन में सुखपूर्वक बैठकर भीतर तथा बाहर आने वाली श्वास पर चेतना को केन्द्रित कीजिए।
2. अनुभव करिये कि अपनी श्वास नासिका से नाभि तक जा रही है और नाभि से नासिका तक वापस आ रही है।
3. भीतर जाने वाली श्वास के साथ “सो” तथा बाहर आने वाली श्वास के साथ “हं” का ध्यान करिये।
4. लययुक्त “सो” को “हं” की तरंगों से इस तरह जोड़ें कि सोSHं-हंसो की एक आवृत्ति बने।
5. एक आवृत्ति के बाह्य मानसिक शून्यता की स्थिति में आकर अपनी चेतना को भूमध्य पर केन्द्रित करें।
6. पुनः सोSHं-हंसो की आवृत्ति को दुहरायें।  
तृतीय चरण के पूर्ण अभ्यास के बाद अगले चरण का अभ्यास करें।

### चतुर्थ चरणः -

1. किसी स्थिर तथा आरामदायक आसन में बैठकर लम्बी श्वास लेकर चेतना को मूलाधार चक्र में केन्द्रित कीजिए।
2. अनुभव कीजिए कि मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी त्रिभुजाकार आकृति के अन्दर मुंह नीचे तथा पूँछ ऊपर किये सुप्त है।
3. अब “सो” के साथ श्वास लीजिए चेतना को “सो” की तरंग के साथ मूलाधार चक्र से स्वाधिष्ठान चक्र, फिर मणिपूरचक्र-अनाहतचक्र-विशुद्धिचक्र तथा अन्त में आज्ञाचक्र में केन्द्रित कीजिए।
4. आज्ञा चक्र में श्वास की चेतना को रोक कर “हं” की मानसिक तरंगों के साथ श्वास छोड़ते हुए मेरुदण्ड होते हुए मूलाधार में चेतना को केन्द्रित करें।
5. मूलाधार चक्र से आज्ञाचक्र तक “सो” के साथ आरोहण करते हैं तथा आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र तक “हं” की तरंग के साथ अवरोहण होता है।

इस चतुर्थ चरण का पूर्ण अभ्यास होने पर आगे के चरण में अभ्यास करें।

### पंचम चरण -

1. षष्ठी मुद्रा अथवा योनि मुद्रा (पद्मासन या वज्रासन में बैठ कर दोनों अंगूठे से दोनों कानों को बन्द करें, दोनों तर्जनी से दोनों आंखों, मध्यमा से दोनों नाक के छिंद्रों, दोनों अनामिका के ऊपर के ओठ कनिष्ठा से नीचे ओठ अन्दर करने पर) की स्थिति में आइए।
2. “सो” की तरंगों को रीढ़ प्रदेश में मूलाधार चक्र से आज्ञाचक्र तक ले जाइए।
3. आज्ञाचक्र में मानसिक शून्यता की स्थिति में आइए।
4. आज्ञाचक्र में मानसिक शून्यता की स्थिति के बाद “हं” की तरंग के साथ आज्ञा चक्र से मूलाधार में मानसिक शून्यता की स्थिति के बाद “हं” की तरंग के साथ आज्ञा चक्र से मूलाधार चक्र तक चेतना को रीढ़ प्रदेश होते हुए ले जाइए।
5. एक आवृत्ति के बाद श्वास छोड़ कर आराम की स्थिति में आइए।
6. पुनः योनि-मुद्रा की स्थिति में आकर “सो” की तरंग को मूलाधार से आज्ञाचक्र तथा “हं” की तरंग को आज्ञा

चक्र से विभिन्न चक्रों से होते हुए मूलाधार चक्र तक की आवृत्ति का अभ्यास करें।

इस प्रकार अजपा के सतत अभ्यास से साधक आत्मा और ब्रह्म की एकता का, हृदय में आत्म पूर्णता की चेतना के आनन्द का अनुभव करके सच्चिदानन्दमय हो जाता है। अर्थात् मानव-चेतना विकास की उच्चतम स्थिति समाधि में पहुँच जाती है।

अजपा द्वारा रोगोपचार -

1. प्राण, मंत्र और चेतना को संयुक्त करने से अजपा बनता है। यह केवल पूजा और जप का एक तरीका मात्र नहीं है। अजपा केवल साधना नहीं है। अजपा सिर्फ समाधि भी नहीं है। अजपा सिर्फ प्राणायाम भी नहीं वरन् अजपा मनुष्य के तीनों आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक-तापों का शमन करता है तथा विभिन्न तनावों क्रमशः शारीरिक तनावों, मानसिक तनावों तथा भावनात्मक तनावों को दूर कर शान्ति प्रदान करता है।
2. अजपा का सतत अभ्यास कुण्डलिनी-जागरण में सहायक हो सकता है।
3. अजपा अनिद्रा, हृदय-रोग, सिर-दर्द आदि अनेक रोगों में भी रामबाण साबित हुई है। तीन प्रकार के तापों को शमन करने के लिये नाथ सिद्धों ने एक मंत्र दिया जिसे अजपा गायत्री कहते हैं। इसके विभिन्न चक्रों के स्थान, देवता तथा अजपा की संख्या बताई गयी है। इसका अभ्यास करने से साधक सभी प्रकार के तापों का शमन करके परम सुख और शान्ति का अनुभव करता है।